

भूमिका

प्रायः एक वर्ष हुआ मेरे मित्र बाबू नारायणदासजी बाजोरिया [illegible] ए० ने मुझे एक पुस्तक देकर यह इच्छा प्रकट की थी कि चीनके विषयमें हिन्दीमें कोई पुस्तक लिखी जाय। इसके लिये उन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया और मैंने पुस्तक लिखना स्वीकार भी कर लिया। परन्तु ऐसी पुस्तककी सब सामग्री काशीमें उपलब्ध न थी, इससे इसका बहुत कुछ काम गत वर्षके जुलाई अगस्त महीनोंमें कलकत्तेमें किया गया।

इस विषयकी हिन्दीमें शायद यह पहली ही पुस्तक है और हमारे ज्ञानका साधन अंगरेजीमें प्रकाशित एतद्विषयक साहित्य ही है। चीनी नामोंका उच्चारण कठिन इसलिये और भी है कि वे अंगरेजीमें लिखे जाते हैं और अंगरेजी अक्षर उन्हें ठीक ठीक व्यक्त नहीं कर सकते। मेरा विचार था कि चीनी लोग जैसे उच्चारण करते हैं, वैसे ही पाठकोंके सामने रखे जायँ। परन्तु कई कारणोंसे यह नहीं हो सका, जिसका मुझे खेद है।

[illegible] मञ्चूरिया तकमें चीनकी राजनीतिक स्थितिका भी कुछ दिग्दर्शन कराया [illegible] उसे संकेतमात्र समझना चाहिये। क्योंकि स्थितिमें हेरफेर होता [illegible] है। फिर भी मुझे आशा है कि इससे हिन्दी पाठकोंका ज्ञानवर्द्धन [illegible] होगा। मंगोलिया-मञ्चूरिया और कोरियाके वर्तमान रूपोंको बतानेवाले दो परिशिष्ट भी दे दिये गये हैं। जिन अनेक पुस्तकोंसे इसके लिखनेमें सहायता ली गयी है, उनके लेखकोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

काशी;
अक्षयतृतीया,
सं० २००२ वि०

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

चीन और भारत

हमारा पड़ोसी चीन

चीन हमारा पड़ोसी है। पहले उसके साथ हमारी घनिष्ठता भी थी। परन्तु प्रायः आठ नौ सौ वर्षोंसे हम दोनो उस पुराने भाईचारेको भूल गये। जो हो, हिमालय-पर्वत-श्रेणी भारतको चीन महाराज्यसे अलग करती है। हिमालयके उत्तर तिब्बत है और तिब्बतके पूर्व-दक्षिण तथा बर्माके पश्चिम मुख्य चीन है। मुख्य चीनके उत्तरमें मंगोलिया, उत्तर-पूर्वमें तथा मंगोलियाके पूर्वमें मंचूरिया और मंगोलियाके पश्चिममें चीनी तुर्किस्तान अथवा सिनकियांग है। तन्नू तूवा किसी समय मंगोलियाका ही भाग था, जो आज स्वतन्त्र राज्य है। इस प्रकार चीन महाराज्यके पाँच अंग हैं:—१—मुख्य चीन, २—मंचूरिया, ३—मंगोलिया, ४—तिब्बत और ५—सिनकियांग।

इनके क्षेत्रफल और जनसंख्याएँ इस प्रकार हैं :—

	अंग	क्षेत्रफल वर्ग मील	जनसंख्या
१	मुख्य चीन	२९,०३,४७५	४२,२७,०७,८६८
२	मंगोलिया	१८,७५,०००	८,५०,०००
३	मंचूरिया	५०,३०,१३	४,१२,३८,९५४
४	तिब्बत	४,६३.२००	८०,००,००
५	सिनकियांग	५,५०,३४०	१२.००,०००

तिब्बतकी संख्या १५ से ६० लाखतक मानी जाती थी, परन्तु हालके हिसाबसे ७—८ लाखसे अधिक नहीं समझी जाती।

चीनके शासनका इतिहास

चीनके शासक मंगोलियाके मूलनिवासी थे, इसलिए चीनी लोग आज भी मंगोल जातीय कहलाते हैं। इनके नामके अन्तमें 'खान' या 'हान' उपाधि लगती थी। ये मुसलमान न थे, क्योंकि इस्लामके जन्मसे बहुत पहलेकी यह बात है। कहते हैं कि चंगेज खाँ और तैमूरलंग आदि मंगोल जातिके ही थे, यद्यपि ये इस्लामके अनुयायी थे। यह भी प्रसिद्ध है कि हलाकू खाँने ही मंगोलोंमें सबसे पहले बौद्ध धर्मकी श्रेष्ठता और महत्ता स्वीकार की थी। मंगोल होनेके कारण दिल्लीके बादशाह जो तैमूरलंगके वंशमें थे, मुगल कहलाते थे। यह आश्चर्यकी बात है कि हलाकू खाँ और चंगेजखाँके बाद दिल्लीके मुगलोंमें किसीकी खाँ या खान उपाधि नहीं हुई और आजकल 'खान' पठानकी उपाधि मानी जाती है। यद्यपि ब्रिटिश भारतकी सरकार मुसलमानोंको ही नहीं, पारसियोंको भी खाँ साहब और खाँबहादुर बनाती है! सन् १६४३ में मंचूरियाके मंचू लोगोंने चीनको जीत लिया और १९११ की क्रान्तितक चीनके सम्राट्, सरदार और मुख्य कर्मचारी प्रायः सभी मंचू ही रहे। ये मंचू लम्बी गुथी हुई चोटियाँ रखते थे, जो हमारे देशकी स्त्रियोंकी वेनीसी होती थीं। परन्तु चीनमें क्रान्ति क्या हुई उसका पहला प्रभाव इन चोटियोंपर ही पड़ा। इसके बाद किसी चीनीके सिरपर चोटी नहीं रही।

पहले हम मुख्य चीनकी चर्चा करते हैं। चीनके शासकोंने २२०० वर्ष पहले चीनकी उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी सीमापर २५५० मील लम्बी दीवार, शहरपनाह नहीं, मुल्क पनाह बनायी थी जिससे तातार लोग चीन-पर चढ़ाई न कर सकें। परन्तु उससे चीनकी रक्षा न हो सकी। सम्राट् चिन शिह वांग तीका यह उद्योग व्यर्थ हो गया। इससे विशेष हानि नहीं हुई, क्योंकि तातार या मंगोल आक्रमण करके देशमें बस गये और चीनी बन गये। जैसे हमारे देशसे पठानोंका प्रभुत्व हटाकर मुगलोंने अपना

स्थापित किया था, वैसे ही मंगोलोंको मंचुओंने निकाला। परन्तु यूरोपियनोंने समुद्रमार्गसे जो प्रवेश किया, उससे चीनकी बधिया बैठ गयी। रूस चीनका पड़ोसी है, इसलिए वह स्थल-मार्गसे ही चीनमें पहुँचा। परन्तु और यूरोपियन और अन्य जातियाँ जलमार्गसे आयीं। १८४२ में ब्रिटेनने, १८४४ में अमेरिका और फ्रान्सने, १८४७में नार्वे और स्वीडेनने, १८६३में डेनमार्क और हालैंडने, १८६४में स्पेनने, १८६५में बेलजियमने, १८६६में इटलीने, १८७४में पेरूने, १८८१में ब्राजिलने, १८८७में पोर्चुगालने, १८९५में जापानने, १८९९में मेक्सिकोने, १९१५ में चिलीने, १९१८ में स्विट्‌जरलैंडने, १९१९में बोलिवियाने, १९२०में ईरानने और १९२१में जर्मनीने चीनसे सन्धि की थी। इन सन्धियोंके कारण बहुत अधिक संख्यामें विदेशी लोग चीनमें रहने लगे। इस कारण दो लाखसे अधिक जापानी, १५ हजार अंगरेज, १० हजार अमेरिकन, ८५,००० रूसी, ४,००० फ्रेंच, ३,००० जर्मन और ३,५०० पोर्चुगीज चीनमें जा बसे। यह भी उतना बुरा नहीं था, परन्तु विदेशियोंने अपनी सन्धियोंसे विशेषाधिकार प्राप्तकर चीन-राज्यके अन्दर अपने-अपने राज्य बना लिये और धीरे धीरे चीनके टुकड़े करना आरम्भ किया।

सबसे पहले पड़ोसी जापानने ही चीनको नंगा करना शुरू किया। १८७५में जापानने कोरियाके तटपर अपनी पलटनें यह कहकर उतार दीं कि हम कोरियाको चीनकी दासतासे छुड़ाने आये हैं। फरवरी १८७६ में एमिफाईकी सन्धिके अनुसार जापानने यह स्वीकार किया था कि राज्य कोरियाका ही है। परन्तु फिर १८८२ और १८८४ में जापानने ही वहाँ गदर कराके चीनसे स्वीकार कराया कि कोरियामें जैसे चीनके अधिकार हैं, वैसे ही जापानके भी हैं! यह अवस्था भी बहुत दिनों न चल सकी और १८९४ में जापानने चीनसे युद्ध छेड़ दिया। इसमें चीन हार गया। मई १८९५ में शिमोनेसेकी स्थानमें चीन-जापानकी जो सन्धि हुई, उसके अनुसार जापानने उसके तैवान (फार्मोसा) और होकोतो (पेस्केडोर्स)

टापू और २० करोड़ तैल क्षतिपूरणमें पाये और कोरियाकी स्वतंत्रता चीन-से स्वीकार करा ली ।

१९वीं शताब्दीमें प्रशान्त महासागरमें और उसके आसपास शिकारकी खोजमें यूरोपियन शक्तियाँ मँडराने लगीं । कच्चे मालकी खोज करते करते वे चीन और जापानसे व्यापार करने लगीं । चीनकी एमाय, फूचाऊ, और कैनटन बन्दरगाहें विदेशी व्यापारियोंके लिए रियायतें (कनसेशन) रूपसे खुल गयीं । [1]शंघाईमें एक तो अन्तरराष्ट्रीय बस्ती (इनटर नेशनल सेटेलमेंट) [2] और एक रियायती बस्ती (कनसेशन) फ्रांसकी स्थापित हो गयी, पिछली १८४३ में और पहली १८४९ में । इसके पहले ही १८४२ में ब्रिटेनने चीनसे लड़ाई ठानकर हांगकांग टापू ले लिया और १८६१ में दूसरी लड़ाई लड़कर कौलून प्राप्त किया । १८५८ में रूसने निकोलायवस्क और १८६१ में ब्लाडीवोस्टाक बन्दरगाहें प्राप्त कीं । १८७४ में फ्रान्सने आनाम अपने साम्राज्यमें मिला लिया और १८८० में ब्रिटेनने बर्मा जीता । १८९९ में दो जर्मन मिशनरी चीनमें मार डाले गये थे । इसके प्रतिकार स्वरूप जर्मनीने चीनसे उसका क्योचाऊ प्रायद्वीप ९९ सालके पट्टेपर ले लिया । इसी वर्ष रूसने २५ वर्षके पट्टेपर चीनसे पोर्टआर्थर प्राप्त किया । इससे उसके

१—चीनमें कनसेशन उस स्थानका नाम है जो विदेशियोंके व्यापार या निवासके लिए चीन सरकारसे वार्षिक किरायेके आधारपर पट्टेपर अङ्गरेज या दूसरे विदेशियोंने ले रखा हो । १९३९–४५ के महासमरके पहले कैण्टन (शामीन), चिनकियांग न्यू च्वांग और तिन्तिसन ब्रिटिश कनसेशन थे ।

२—सैटलमेंट (बस्ती) उन स्थानोंका नाम है जो चीनी जमींदारोंसे पट्टेपर लिये जाते थे और चीनी अधिकारी अपना टैक्स लेकर जिनकी रजिस्ट्री कर दिया करते थे । महासमरके पूर्व ऐसी अन्तरराष्ट्रीय बस्ती शंघाई थी ।

हाथमें जापानके पड़ोसमें बर्फसे रहित बन्दरगाह आ गयी और वह समुद्रसे चीनके पेकिंग नगरको जानेवाले मार्गका नियंत्रण करने लगा। यह अङ्ग-रेज़ कब सह सकते थे? उन्होंने १९०८ में चीनके सामने अपनी यह माँग रखी कि हांगकांगके सामने कौलूनतक जो बढ़ा हुआ भूभाग है, वह भी दे दो और वीहाईवीकी बन्दरगाहका पट्टा भी दे दो, जिससे पोर्ट-अर्थरमें क्या होता है यह हम देख सकें। दस साल पहले १८९८ में चीन सरकारसे फ्रान्सने हांगकांग और हैनान टापुओंके बीच क्वांगचौवानकी खाड़ीका पट्टा ९९ सालके लिए ले लिया था। यही नहीं, उन दो टापुओंका पट्टा भी ले लिया जो खाड़ीके मुहानेपर हैं। यह भूभाग हिन्द-चीनके गवर्नर जेनरलके शासनाधीन है। २७ मार्च १८९८ में चीन-रूस-सन्धिसे पोर्टअर्थर और तलियानवान (जिसे रूसी डालनी और जापानी डेर्न कहते हैं) तथा इससे लगा हुआ जल और स्थल भाग रूसके अधिकारमें चले गये। यह व्यवस्था २५ वर्षके लिए हुई, पर उभयपक्षकी स्वीकृतिसे बढ़ सकती है। १९१० में जापानने घोषणा की कि कोरिया स्वेच्छासे जापानसे मिल गया।

१८९८ में चीनके सम्राट् क्यूवांग हसूने चीनकी राजनीतिक और आर्थिक पद्धतियोंके आमूल संशोधनकी आज्ञा दी थी। इसके अनुसार आधुनिक स्कूल और कारखाने खुलने थे और सेनाको आधुनिक पद्धतिसे शिक्षा दी जानी थी। परन्तु तीन महीने बाद राजमाताका दिमाग बिगड़ गया और उसने उन छ सज्जनोंको फाँसीपर लटकाये जानेकी आज्ञा दे दी जो सुधारोंके पक्षपाती समझे जाते थे। दैवयोगसे उसके सिंहासनपर अधिकार करते ही सुधारकोंके नेताकांग यू वी जापान भाग गये और इसलिए बच गये। परन्तु काल प्रबल होता है; उसकी गति कौन रोक सकता था? बाक्सर-विद्रोह हुआ। यह विद्रोह उन गुप्त संस्थाओंका था, जो विदेशियोंको मार भगाना चाहती थीं, क्योंकि इनमें प्रजा पीड़ित थी। फल यह हुआ कि आठ विदेशी शक्तियोंने चीनपर चढ़ाई कर दी। इसका

यह सुफल हुआ कि प्रतिक्रियावादियोंको पुराना ढंग छोड़ना और नया अपनाना पड़ा, जिससे वे घृणा करते थे।

बाक्सर-विद्रोहके कारण विदेशियोंकी और भी अधिक धौंस चीनको सहनी पड़ी। इसके सिवा इसीकी आड़में रूसने मंचूरियापर अधिकार कर लिया। जापानने उसे वहाँसे हटानेके प्रयत्न किये, पर जब सफलता न मिली, तब ८ फरवरी १९०४ को उसने रूससे युद्ध छेड़ दिया और इसे जल और स्थल दोनोपर हरा दिया। पोर्ट्समथकी सन्धिके अनुसार क्वानतुंग वा लियाओतुंग प्रायद्वीप छोड़कर रूसने तो मंचूरिया खाली ही कर दिया और जापानने भी मंचूरिया खाली कर देना स्वीकार कर लिया। २२ दिसम्बर १९०५ की सन्धिके अनुसार चीनने स्वीकार कर लिया कि रूस लियाओतुंग प्रायद्वीप और पोर्ट आर्थरसे क्वांगचेंग तकका पट्टा जापानको दे दे। जापानको यह भी अधिकार मिला कि वह मंचूरियाके आनतुंगसे मुकदनतक रेल बना ले और चीनने १६ मंचूरी बन्दरगाहों और शहरोंको विदेशी व्यापारके लिए खोल दिया।

१९०८ में चीन सरकारने प्रजाको प्रादेशिक कौन्सिलोंके लिए प्रतिनिधि चुननेके अधिकार दिये और १९०९ तक १० प्रदेशोंमें ऐसी कौंसिलें बन भी गयीं। परन्तु चूँकि गवर्नरोंको ये कौन्सिलें तोड़ देनेका अधिकार भी था, इसलिए कुछ विशेष फल न हुआ। १९१० में रूस और जापानमें सन्धि हुई कि मंचूरियाकी पुरानी स्थिति ज्योंकी त्यों रहे और ब्रिटेनने चीनसे यह प्रतिज्ञा करायी कि जबतक जापानके हाथमें पोर्ट आर्थर रहे, तबतक शान्तुंग प्रदेशके वीहाईवीपर ब्रिटेनका प्रभुत्व रहे। १९०८ में ही ब्रिटेनने हांगकांग टापूके सामने चीनकी जमीनका पट्टा ९९ वर्षके लिए लिखा लिया। इसके दस साल पहले चीन सरकारने १८९८ में हांगकांग और हैनान टापुओंके क्वांग चौवानकी खाड़ी ९९ वर्षके पट्टेपर फ्रान्सको दे दी थी और एक साल बाद १८९९ में उन दो टापुओंका पट्टा भी लिख दिया था जो खाड़ीके मुहानेपर हैं। यह भूभाग हिन्द-

चीनके गवर्नर जेनरलके शासनाधीन है। १९१० में जापानने घोषणा की कि कोरिया स्वेच्छासे जापानमें मिला।

साम्राज्यसे प्रजातन्त्र

जब अवस्था असह्य हो गयी, तब १० अक्टूबर १९११ को वूचांग शहरसे क्रान्तिका आरम्भ हुआ। इसका प्रवाह रोकनेके लिए मंचू सरकार ने बड़े प्रयत्न किये और जेनरल युआनशि काईको प्रधान मंत्री नियुक्त किया। नयी पद्धतिके अनुसार मंचुओंके अधिकार भी मर्यादित किये और प्रजाद्वारा निर्वाचित पार्लमेंटकी स्थापनाकी भी व्यवस्था की। परन्तु ऐसी लीपापोतीसे क्रान्तिका प्रवाह कहीं रुक सकता था? क्रान्तिने राजतंत्रका अन्त ही कर दिया और १ जनवरी १९१२ को डा० सनयत सेनको राष्ट्र-पति (प्रेसिडेंट) निर्वाचित किया। फिर भी युआनशि काईके लिए इस कारण इन्हें पदत्याग करना पड़ा कि जब १८९८ की लड़ाईमें चीन जापान-से हार गया था, तब राष्ट्ररक्षाकी दृढ़ व्यवस्था करनेको युआनशि काईको नयी सेना खड़ी करनेका आदेश मिला था और इससे युआनके अधिकार-में इतनी बड़ी सेना हो गयी थी, जिससे वह मंचुओं और क्रान्तिकारियों-दोनोंका दमन कर सकता था। इस बीचमें बादशाह मर गया और इसका उत्तराधिकारी हेनरी प्यूई अबोध बालक था। इसे क्रान्तिकारियोंने कैद कर रखा था।

क्रान्तिकारियोंका जोर दक्षिणमें था, इसलिए राजधानी नानकिंगमें रखी गयी थी। पर जब सितम्बर १९१२ में युआनशि काई प्रेसिडेंट चुना गया, तब वह राजधानी हटाकर उत्तर पेकिंग वा पीपिंगमें ले गया। फिर तो उसने पार्लमेंट भी भंग कर दी और स्वेच्छाचारी बन बैठा। जब उसे इससे भी सन्तोष न हुआ, तब १९१६ में उसने सम्राट् बननेकी ठानी। ८ लाख डालर (२४ लाख रुपये) खर्च करके सम्राट्के पहननेकी पोशाकें बनवायीं और २५ सेर वजनकी अपनी सोनेकी मुहर तैयार करायी!

अपनी स्थिति सुदृढ़ करनेको उसने बहुतसे सरदार भी बनाये, पर ८२ दिनोंसे अधिक वह सिंहासनपर न बैठ सका। भयंकर विरोध होनेपर वह हटा और कुछ ही समयके उपरान्त मर गया।

परन्तु देशके दुर्भाग्यका अन्त न हुआ। युद्धपतियोंके युद्ध आरम्भ हुए। प्रत्येक युद्धपति शासन-पद्धतिके अनुसार शासन करनेका दम भी भरता था। त्सोकुन नामक एक युद्धपतिकी पद्धति यद्यपि उत्कोच पद्धति भी कहलाती थी, तथापि इसीके बलपर वह प्रेसिडेंट बन बैठा था! १९२८ में नानकिंगमें फिर राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना हुई। सन यत् सेनने अपने जिन सिद्धान्तोंको मूर्त्तरूप देनेके लिए कोमि-नताङ्० नामका क्रान्तिकारी दल बनाया था, वही इस राष्ट्रीय सरकारका जनक हुआ।

सनयत सेनके सिद्धान्त

डा० सनयत सेनने इन तीन सिद्धान्तोंके आधारपर अपना प्रोग्राम बनाया था राष्ट्रीयता, प्रजासत्ता और समाजवाद। उनका मत था कि जातियाँ प्राकृतिक शक्तियोंके द्वारा विकसित होती हैं। प्राकृतिक शक्ति 'वांगताओ' (राजमार्ग) है। जो दल वांगतओसे ढलता है, वही जाति वा राष्ट्र है। जिन प्राकृतिक शक्तियोंसे जातियाँ वा राष्ट्र ढलते हैं, वे हैं समान रक्त, आजीविका, भाषा, धर्म, आचारनीति और अभ्यास। राष्ट्रीयता वह बहुमूल्य वस्तु है, जिससे राज्य उन्नति करता और राष्ट्र अपने अस्तित्वको स्थायी रखनेकी आकांक्षा करता है। प्रजासत्ता वा लोकप्रभुताके विषयमें उन्होंने बताया कि किसी एकीकृत और संघटित जनसमूहका नाम लोक है। प्रभुता क्या है? यह अधिकार और आदेश है जो सारे राज्यपर फैले रहते हैं। जब लोक और राजशक्तिमें सम्बन्ध हो जाता है, तब लोगोंमें राजनीतिक शक्ति उत्पन्न होती है। सरकार लोगोंकी चीज है; वह लोगोंद्वारा ही लोगोंका नियंत्रण है; यह सब लोगोंके लिए कार्यका

नियंत्रण है। और जब लोकके हाथमें शासनका नियंत्रण रहता है, तब हम उसे लोक प्रभुता वा प्रजाराजत्व कहते हैं।

लोकाजीविकाका सिद्धान्त ही समाजवाद है। मिनशंग प्रकट करता है लोगोंकी आजीविका, समाजकी भलाई, जनताका जीवन। और जनताकी शरीरयात्राकी समस्या हल करनेके लिए ही आजीविकाका सिद्धान्त है। आजीविकाकी खोज सामाजिक उन्नतिके नियमके अनुकूल है। इतिहासमें वह केन्द्रीय शक्ति है। शरीरयात्राकी समस्या लोककी आजीविकाकी समस्या है। लोकाजीविकाकी उन्नति करनेके लिए निम्न-लिखित सिद्धान्तोंको काममें लाना चाहिए :—(१) जमीनके मालिकानेमें सबकी बराबरी और (२) पूँजीका नियंत्रण।

जापानसे झगड़ा और युद्ध

चीन देखनेमें जितना ही बड़ा है, पशुबलमें उतना ही दुर्बल है। इसलिए जिसको देखो, वही उसपर रोब जमाना और उसे दबाना चाहता था और चीन भी 'हाँजी-हाँजी' कहता चला जाता था। यूरोपियन राज्योंने चीनके अनेक भागोंपर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी। यह देख जापानकी भी राल टपकने लगी। उसने देखा कि इस लूटमें यदि अपनेको हिस्सा न मिला, तो कब मिलेगा? इसलिए २५ मई १९१५ को चीन-जापानमें एक शर्तनामा लिखा गया, जिसके अनुसार जापानको पूर्वी मंगोलियाकी खानोंमें पदार्थ निकालनेके साथ ही वहाँ बसनेका अधिकार भी मिल गया। यही नहीं, शान्तुङ्गमें खनिज पदार्थ निकालने और रेलवेके जो सुभीते जर्मनीको थे, वे भी जापानने ले लिये और ९ वर्षोंके लिए पोर्ट आर्थरका पट्टा भी लिखा लिया। १८९८ में जर्मनीने चीनको कियौचाऊ खाड़ीका जो किआचाऊ स्थान छीन लिया था, वह भी १९१४ में जापानने ले लिया और बड़ी मुश्किलसे १९२२ में वाशिंगटन पैक्टके बाद लौटाया। १९१५ में ही, जब प्रथम महासमरानल

प्रज्वलित हो रहा था, जापानने चीनके सामने अपनी २१ माँगें रखीं और उन्हें चीनसे मनवा भी लिया। वाशिंगटन परिषद्में चीनने इस चीन-जापान-सन्धिको विचारार्थ उपस्थित किया। जापानने चीनका दावा तो नामंजूर कर दिया, पर कानफरेन्समें एक वक्तव्यद्वारा कुछ सहूलियतें दे दीं। चीन इसपर राजी हो गया कि मंचूरियामें चीन जो परामर्शदाता और शिक्षक रखे, वे जापानी ही हों और मंचूरिया तथा भीतरी पूर्वी मंगोलियामें रेल बनानेके अधिकार 'इनटर नेशनल कान्सर्टियम' (अन्तर-राष्ट्रीय सङ्घ) को दिये जायँ। चीन इससे सन्तुष्ट न हुआ।

१८ सितम्बर १९३१ को जापानी सेनाने मंचूरियाके मुख्य नगर मुकदनपर अधिकार कर लिया और १८ फरवरी १९३२ को चीनके उत्तर पूर्वी तीन प्रदेशों—फेंगतियन, किरिन और हीलुंगकियांगके साथ जीहोलको मिलाकर 'मंचूको' नामसे स्वतन्त्र राज्य बना दिया। चीनके पदच्युत सम्राट्के उत्तराधिकारी जिस हेनरी प्यूको चीनी प्रजातन्त्रने पहले कैद कर रखा था और पीछे छोड़ दिया था, उसीको जापानियोंने १ मार्च १९३४ को कांगतेह नामसे मंचूकोका सम्राट् घोषित कर दिया। इसका पुराना नाम चांगचुन भी बदलकर हसिनकिंग रख दिया।

इससे भी जापानको सन्तोष न हुआ। ७ जुलाई १९३७ को चीनी और जापानी सिपाहियोंमें लड़ाई ठन गयी। जापानने युद्ध-घोषणा किये बिना ही चीनपर धावा बोल दिया और प्रायः ७ वर्षोंमें मार्च १९४४ तक १० चीनी प्रदेशोंपर अधिकार कर लिया और दक्षिणके ३ प्रदेशों फूकियन, क्वेनतुङ्ग और क्वांगसीपर भी पैर जमा लिये। इस प्रकार ४४०००० वर्गमील चीनी राज्यपर जापानियोंका अधिकार हो गया। चीन और उसके अधीन राज्योंके दसवें भागसे भी अधिक दबा लेनेके सिवा जापानने चीनके सबसे बड़े चार नगर—शंघाई, तिन्त्सिन, हंकाऊ, और कैनतन भी ले लिये।

जब जापानने देखा कि इतना खो चुकनेपर भी चीन झुकता नहीं

है, तो उसने भेदनीतिका आश्रय लिया। उसने वांगचिन वीकी अध्यक्षतामें नानकिंगमें तथोक्त 'चीन प्रजातन्त्रकी राष्ट्रीय सरकार' की स्थापना की। ३० नवम्बर १९४० को चीन (अर्थात् इस चीनी सरकार) और जापानमें सन्धि हुई। इस सन्धि-पत्र और इसके साथ नत्थी कागज-पत्रोंके अनुसार अनिश्चित समयके लिए चीनका सैनिक और आर्थिक नियन्त्रण जापनको मिल गया। वांगने चीन, जापान और मंचूकोकी संयुक्त घोषणामें मंचूकोको स्वीकार कर लिया। १ जुलाई १९४१ को जर्मनी, इटली, बलगारिया, रूमानिया, स्लोवाकिया, क्रोआटिया, स्पेन और हंगरीने भी मंचूकोके स्वतन्त्र राज्यको स्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि चीनने जर्मनी और इटलीसे परराष्ट्रनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

चीनमें धर्म

चीनमें तीन मुख्य धर्मोंके सिवा ईसाई, मुसलमानी या इस्लाम और यहूदी मतोंके अनुयायी भी हैं। मुसलमान तो चीनके प्रत्येक प्रदेशमें मिलते हैं, पर उनकी बहुत अधिक संख्या युन्नान, शेनसी, कानसू, होपी, होनान, शान्तुङ्ग, सेचुआन, सिनकियांग और शानसीमें है। कुल संख्या ४८० लाख है जिसमें ७५,३३,६८० तो अकेले मंचूकोहीमें है। कुल ४२,००० मसजिदें हैं जिनसे ६,५७० मंचूकोमें हैं। मुसलमानोंके बाद ईसाइयोंका नम्बर है। रोमन कैथोलिक सम्प्रदायके ईसाई वहाँ ३०० वर्षोंसे हैं। प्रोटेस्टैंट ईसाई प्रचारक १८०७ से हैं। १९३४ में प्रोटेस्टैंटोंके अधीन १९ कालेज थे जो यूनिवर्सिटीके समान हैं। २६७ मिडिल स्कूल थे जिनमें ३७७१४ विद्यार्थी थे। ईसाई शिक्षा-संस्थाओंमें कुल २,३९,६५५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। होनानके मुख्य नगर काइफेंगमें कुछ चीनी यहूदी भी हैं। चीनके आदिम निवासी पहाड़ी प्रकृति-पूजक हैं।

शिक्षा

१९४१–४२ में चीनमें प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले २,३२,१४५ स्कूल थे, जिनमें ५,५१,३९० शिक्षक और १,९४,९०,०९२ विद्यार्थी थे। १९४१–४२ में सेकंडरी (द्वितीय भाषाके) २,६०६ स्कूलोंमें ५२,७०० शिक्षक और ७,६८,५३० विद्यार्थी थे। उच्चतर शिक्षा देनेवाली संस्थाओंमें १९४१–४२ में ४८ विश्वविद्यालय, ३७ कालेज, और कारीगरीके ४७ स्कूल थे। १९४१–४२ में शिक्षकोंकी कुल संख्या ८,६६६ और विद्यार्थियोंकी ५७,८५३ थी। उच्च शिक्षाका व्यय ११,९६,५६६ युआन था।

१९३९ में चीनकी आय २८५ करोड़ डालर थी और इतना ही व्यय था। पहले सिक्का तैल था। अब ०.७१५ तैलका एक चाँदी का डालर चल रहा है। चीनका सैन्यबल देखनेमें जितना बड़ा जान पड़ता है, उतना है नहीं। परन्तु १९४२ में चीनने युद्ध-क्षेत्रोंमें अनुमान से ५० लाख जवान भेजे थे।

चीनकी प्राकृतिक सम्पत्ति और उद्योग-धन्धे

कपास उपजानेमें भारत और अमेरिकाके बाद चीनका ही नम्बर है। चाय और रेशम उपजानेके सिवा चीनमें सूती कपड़े और ऊनी कपड़ोंकी मिलें हैं और रेशमके भी कारखाने हैं। लोहे, चमड़े, सीमेंट और दियासलाईके कारखाने भी हैं। पश्चिमी चीनमें कोयला, सोना, लोहा, तांबा, सीसा, जस्ता, टंगस्टेन, पारा, सुर्मा और टीन इन सभी पदार्थोंके कारखाने हैं। सड़कें बहुत हैं और रेलोंकी भी १४ लाइनें हैं। नौसेना नहीं है। कई गनबोट अमेरिकाने दिये हैं। नदियोंसे भी यातायातका काम लिया जाता है।

चीनके अधीन राज्य

मंगोलिया, मंचूरिया, तिब्बत और सिनकियांग या चीनी तुर्किस्तान

किसी समय चीनके अधीन राज्य थे, परन्तु आज यद्यपि हम इनमें किसी-को स्वतन्त्र नहीं कह सकते, तथापि ये चीनके अधीन भी नहीं रहे यह निःसंकोच कहा जा सकता है। इनकी स्थिति दिखानेके लिये प्रत्येकका अलग अलग वर्णन किया जायगा।

शासन-पद्धति

चीनकी राष्ट्रीय सरकारका संगठन पांच युआन या कौन्सिलोंसे हुआ है (१) कार्यकारिणी (२) व्यवस्थापिका (३) न्याय सम्बन्धी (४) परीक्षिका और (५) निरीक्षिका । इन पाँचोंकी संज्ञा नेशनल गवर्नमेंट कौन्सिल या स्टेट कौन्सिल है। स्टेट कौन्सिलका सभापति अध्यक्ष या राष्ट्रपति कहाता है। कार्यकारिणी समिति शासन करनेवाली सर्वश्रेष्ठ संस्था है। वही मंत्रियोंको नियुक्त करती और कार्य विशेषके लिए कमिशन बनाती है। पीपल्स पौलिटिकल कौन्सिल युद्ध कालीन अर्द्ध व्यवस्थापिका परिषद है। इसमें २४० मेम्बर हैं।

९ अक्तूबर १९४२ को ब्रिटेन और अमेरिकाने कहा कि चीनमें हमें राज्य सम्बन्धी जो विशेष अधिकार और सुभीते हैं, उन्हें छोड़नेको हम तैयार हैं। इसके अनुसार दोनोंने जिन स्थानोंपर अधिकार कर लिया था, उन्हें छोड़ दिया। पर ब्रिटेनने हांगकांगटापूपर अपना अधिकार रखनेका निश्चय प्रकट किया। इसके लिए चुंगकिंग और वाशिंगटनमें ११ जनवरी १९४३ को सन्धि हुई और २० मई १९४३ को इसकी पुष्टि भी दोनों देशोंकी राष्ट्र-सभाओंने कर दी। स्विट्ज़रलैंड, हालैंड और बेलजियमकी सरकारोंने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार चीन स्वतंत्र हो गया। वह किसी विदेशी राष्ट्रका दबैल नहीं रहा। परन्तु चीनमें आपसमें थोड़ा मतभेद है। येनान प्रदेशमें कम्यूनिस्टोंका बोलबाला है। उसमें न कोमिन्तांगका कोई हाथ है और न कोमिन्तांगका येनानमें। इसका शासन और सेना स्वतंत्र हैं। दोनोंमें मेल करानेकी चेष्टाएँ तो हुईं, पर सफल नहीं हुआ।

तिब्बत

चीनकी अपेक्षा तिब्बतका भारतसे घनिष्ठतर सम्बन्ध है, क्योंकि भारतकी उत्तरी सीमा १३०० मीलतक तिब्बतकी दक्षिणी सीमासे मिली हुई है। हिमालय और क्विनलन पर्वत-श्रेणियोंके बीच तिब्बत पामीरसे पूर्व चांगसा और सिकांगकी सीमातक फैला हुआ है। तिब्बतका भारतके साथ धर्म-सम्बन्ध भी है, क्योंकि हीनयान बौद्ध सम्प्रदायका वह मुख्य क्षेत्र है जिसके आचार्य दलाईलामा माने जाते हैं। वैसे भी हिन्दुओंकी तिब्बतके विषयमें पूज्य बुद्धि है, क्योंकि पुराणके वचनानुसार 'ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे' अर्थात् जो कुरुक्षेत्र में बसते हैं, वे मानो तिब्बतमें बसते हैं। इस हिसाबसे तिब्बत कुरुक्षेत्रसे भी पवित्र स्थान है। स्वा० दयानन्द सरस्वतीने तो तिब्बतमें सबसे पहले मानुषी सृष्टिकी कल्पना की है।

तिब्बत चीन साम्राज्यका अंग अवश्य था, परन्तु १९११ की क्रान्तिके बाद स्वतंत्र हो गया। चीनके दूत या प्रतिनिधिको उसने सदाके लिए विदा कर दिया। वैसे तो चीन और तिब्बतका सम्बन्ध १२०० वर्षोंसे भी पहलेका ही है, पर ई० १८ वें शतकसे पहले चीनियोंने उसपर अपना वर्चस्व नहीं स्थापित किया था। कालान्तरमें यह शिथिल पड़ गया और चीनी क्रान्तिने तिब्बतको अवसर दे दिया कि वह चीनी अम्बन या प्रतिनिधि और उसकी सेनाको स्वदेशसे खदेड़ बाहर कर दे।

ब्रिटिश सरकार रूससे बहुत समयसे सशंक रहती आती है। उसे भारतपर रूसकी चढ़ाईकी चिन्ता सताया करती है। इसीलिए कोई ५५ साल पहले उसने कश्मीरके स्वर्गीय महाराज सर प्रतापसिंहको श्रीनगरसे हटाकर जम्बूमें इस निमित्त रख दिया था कि वे उसके गिलगिटपर अधिकार करनेमें बाधक थे। कश्मीर राज्यके चार भाग हैं श्रीनगर, पुञ्छ, गिलगिट और लदाख। लदाखको छोटा तिब्बत भी कहते हैं। इस छोटे तिब्बतमें भी बौद्धोंकी बस्ती है, पर यह उस स्वतंत्र तिब्बतसे भिन्न

है। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि गिलगिटपर अधिकार करके रूसियोंकी राह रोक दे।

१९०३-४ में पूर्वोपायके विचारसे कर्नल (बादको जेनरल) यंग-हस्बैंडकी अध्यक्षतामें ब्रिटिश सरकारके आदेशसे भारत सरकारने तिब्बतमें अपना दूतमण्डल भेजा था। कर्नल यंगहस्बैंड तिब्बतकी राजधानी ल्हासातक पहुँच गये थे। यहाँ इन्होंने तिब्बतसे यह सन्धि की कि पश्चिमी और दक्षिणी तिब्बतके तीन नगरोंमें अंगरेज अपनी व्यापारी कोठियाँ स्थापित कर सकेंगे और व्यापारकी रक्षाके लिए सौ जवान रख सकेंगे। भारत और ग्यान्तसीके बीच डाक और टेलीफोनकी व्यवस्था हो गयी है और इसपर ब्रिटिश भारतकी सरकारका अधिकार है।

१४००० और १८००० फुट ऊँचे पहाड़ी दर्रे होकर भारत और तिब्बतका व्यापार होता है। भारतसे तिब्बत जानेके तीन मार्ग हैं (१) सिलीगुडीसे, जो दार्जिलिंगके पास है और सिकिम राज्यसे ग्यान्तसी और यातुङ्ग होकर (२) अल्मोड़ेसे और (३) शिमलेसे गरटोक।

तिब्बतपर प्रभुत्व स्थापन करनेके लिए चीन और ब्रिटेन दोनों लालायित हैं। इन्हें सन्देह है कि रूसकी भी दृष्टि उसपर है। इस प्रकार यह भी झगड़ेका एक कारण समझना चाहिए। सैन्यशक्तिमें तिब्बत दुर्बल ही है।

दलाईलामा हीनयान बौद्ध सम्प्रदायके प्रधान आचार्य हैं, इसलिए चीनी तुर्किस्तान और भीतरी मंगोलियासे भी बौद्ध यात्री ल्हासा जाते हैं। मंगोलियाके द्वारा तिब्बतका नाता रूससे भी लग जाता है।

मंचूरिया

जैसा पहले बतलाया जा चुका है १८ सितम्बर १९३१ को जापानने मंचूरियापर आक्रमण किया था। इसपर चीनने राष्ट्रसंघसे प्रतिज्ञा-पत्रकी ११ वीं धाराके अनुसार २१ सितम्बर १९३१ को प्रार्थना की कि

वह जापानके विरुद्ध काररवाई करे। जापानने कहा कि मंचूरियाका सम्बन्ध चीन और जापानसे है, दूसरोंको इस झगड़ेसे कुछ मतलब नहीं है। चीनने २५ जनवरी १९३२ को फिर राष्ट्रसंघसे प्रार्थना की और बतलाया कि १०वीं धाराके अनुसार मेम्बरों तथा राज्योंकी अखंडताकी रक्षाकी गारंटी संघने दे रखी है। उसने १५वीं धाराकी भी दुहाई दी, जिसके अनुसार कार्य न होनेसे १६वीं धाराका प्रयोग होना अनिवार्य है। परन्तु जब चीनने राष्ट्र संघसे अपील की, तब अमेरिकाके स्टेट सेक्रेटरी मि० स्टिमसनने कहा कि हम लीगके कार्यका समर्थन करेंगे और अमेरिकन स्टेट-सेक्रेटरीने यह भी सूचित किया कि जबर्दस्तीकी किसी काररवाईको हम स्वीकार न करेंगे। पर जब उनसे काररवाई करनेको कहा गया, तो इन्होंने लिखा कि बहुतसे अमेरिकनोंको पता ही नहीं कि मंचूरिया पृथ्वीके किस कोनेमें है और वे कहते हैं कि उस झगड़ेमें पड़कर हम क्या करेंगे। ब्रिटेनकी ओरसे सर जान साइमनने कहा कि जापानको फैलनेकी जगह चाहिए और वह आज वही कर रहा है जो ग्रेट ब्रिटेनने पहले किया है। संघके प्रतिज्ञा-पत्रमें कठिनाई यही है कि वह इतिहासके प्रेरक बलको कार्य करनेका यथेष्ट अवसर नहीं देता। वह बल जो हमें भारत ले गया था, वही जापानको मंचूरिया लिये जा रहा है। जापानस्थित ब्रिटिश राजदूतने कहा कि मंचूकोमें अपने कामोंके लिए जापानी बहुत उकसाये गये। उन्होंने रूसियोंको निकाल बाहर किया और अपने लिए अधिकार प्राप्त किये और जिस ढंगसे चीनी उन अधिकारोंको पददलित करते हैं, उससे जापानियोंका धैर्य छूट गया है। पर मार्च, १९३२ में राष्ट्र संघकी परिषदमें प्रस्ताव पास किया गया कि हम इस तरहका कार्य स्वीकार नहीं करते। यद्यपि इससे जापानका कुछ बनता बिगड़ता न था, तथापि उसने संघसे इस्तीफा दे दिया और मंचूरियाके बाद जिहोल ही नहीं, भीतरी मंगोलियाके भी दो प्रदेशों चहार और सुइयुआनपर अधिकार कर लिया। १९३७ में जापानने चीनपर फिर आक्रमण किया। २२ मई १९३३ को चीनके

प्रतिनिधि डा० वेलिंगटन कूने अपील की कि चीनको यथेष्ट सहायता दी जाय; आर्थिक सहायता भी दी जाय; जापानको युद्ध सामग्री न भेजी जाय; शरणार्थियोंकी सहायता की जाय और संघकी प्रतिज्ञाएं पूरी की जायँ। अमेरिका और ब्रिटेनने १९२२ की नौशक्तियोंकी वाशिंगटन सन्धिपर सही करके भी चीनको किसी प्रकारकी सहायता नहीं दी और ब्रिटेनने तो जापानके कहनेसे जुलाईसे अक्टूबर १९४० तक, तीन महीनेके लिये ही क्यों न हो बर्मा रोड भी बन्द कर दी ! इससे चीनको युद्धसंचालनके लिये शस्त्रास्त्रका मिलना बन्द हो गया। चीनको जो थोड़ी बहुत सहायता मिलने-का द्वार था वह भी बन्द हो गया। इसके विपरीत यूरोपकी बड़ी शक्तियाँ शस्त्रास्त्र, तेल, रबर, लोहेके टुकड़े, कच्चा लोहा और ऐल्युमिनियम जापानको बेचती रहीं ! यदि पर्ल हार्बरपर ७ दिसम्बर १९४१ को जापानने चोट न की होती, तो क्या आज ब्रिटेन और अमेरिका चीनकी मददपर खड़े होते ?

यों तो कहनेके लिये मंचूको स्वतंत्र है और उसका सम्राट् हेनरी प्यू उर्फ कांगतेह है, पर वास्तवमें वह जापानके अधीन है। युआन नामक चाँदीका सिक्का वहाँ चलता है जिसमें २३·९१ 'ग्राम' शुद्ध चाँदी रहती है। इसका दसवाँ हिस्सा चिआओ, सवाँ हिस्सा फैंग और हजारवाँ हिस्सा ली कहाता है।

मंचूकोकी सेनामें ८०००० जवान हैं उसकी छोटीसी नौसेना भी है। वैसे तो वह कृषि प्रधान देश है, परन्तु खनिज सम्पत्ति वहाँ बहुत है। लोहा, सोना, कोयला, मैंगनीज और तेलके स्तर वा पर्त वहाँ पाये जाते हैं। इम्पीरियल मिलिटरी जागरफीके लेखक मेजर डी०एच० कोल एम० बी० ई०, एन० ए०, एफ०आर०, जी० एस० का कहना है कि जापान २० वर्षोंतक अपने मंचूरियन साधनोंको बढ़ाता रहता, तो वह इतना प्रबल हो जाता कि संसारको चुनौती दे देता और अकेले सबके दाँत खट्टे कर देता। परन्तु उसे इतना धीरज न हुआ और इतनी तैयारी उसने काफी समझ युद्ध छेड़ दिया।

Should Japan be able to obtain recognition from the Powers of the world for the republic of Manchukuo which has been set up, and to retain a protectorate over this region, the economic weaknesses whtch might be fatal to her in war would be removed and a generation hence, as a selfsupporting Empire of perhaps 200 million people, she would be, without rival, the greatest power in the East and perhaps in the world. p. 163.

Imperial Military Geography by Major D. H. Cole M. B. E. N. A. F. R. G. S. (Sifton Praed & Co. Ltd. London).

मंगोलिया

मंगोलियाके दो भाग हैं, जो बाहरी मंगोलिया और भीतरी मंगोलिया कहाते हैं। बाहरी मंगोलियापर रूसका और भीतरी मंगोलियापर जापानका प्रभाव है। संसारमें मंगोलोंकी संख्या ५० लाख बतायी जाती है। हमने स्टेट्समैन्स इयर बुकके अनुसार मंगोलियाके निवासियोंकी संख्या इस पुस्तकके प्रथम पृष्ठपर ८,५०,००० लिखी है, परन्तु ओवेन लैटिमोरके अनुसार संसारमें मंगोलोंकी संख्या ५० लाख है और इनमें १० लाख मंगोलियामें बसते हैं। इतने ही भीतरी मंगोलियाके उस भाग-में भी रहते हैं, जो कालागनके उत्तर है। २० लाख मंचूकोके हसिंगन प्रदेशमें और शेष सिनकियांग, तिब्बतके कुछ अंशमें, साइबेरियाके ब्यूरियट प्रजातंत्र राज्यमें और वोलगा नदीके निचले भागके किनारे-किनारे बसे हुए हैं। ओवेन लैटिमोर मंगोलोंके विषयमें बड़े जानकार माने जाते हैं, इसलिये उनके मतका भी महत्त्व है।

रूसने १९१५ से मंगोलियामें प्रवेश करना प्रारम्भ किया था और धीरे धीरे वह बाहरी मंगोलियाका संरक्षक बन बैठा। इस बाहरी मंगो-लियाकी कैसी विचित्र स्थिति है यह इसीसे जाना जायगा कि इसपर राज्य तो, चीनका है पर इसका संरक्षक रूस है! १९२१ में ऐसी कई घटनाएँ

हुई, जिनसे वहाँ रूसकी शक्ति निरन्तर बढ़ती ही चली गयी। स्टर्नवर्ग नामक एक ह्वाइट या बाइलो रूसी, जो अपनेको 'मैड ब्रैरन' कहता था, रूससे भागकर मंगोलियाकी राजधानी उर्गा (जो बादको 'उलन बेटोर' कहाने लगा) पहुँचा और धींगामुश्तीसे उसने शासनयन्त्र ही नहीं छीन लिया, बल्कि जहाँ तहाँ अत्याचारोंकी भी पराकाष्ठा कर दी। मंगोल तो इसके विरुद्ध खड़े ही हुए, पर रूसी लालसेनाकी भी सहायता उन्हें मिल गयी। फिर भी उसको मिटाकर रूसी वहीं डट गये। इसपर तो रूसियोंका रोब और भी जम गया, यद्यपि नामके लिये शासनकी बागडोर मुख्य लामाके हाथमें रही, जो कभी कभी 'जीवित बुद्ध' कहाते हैं। जब १९२४ में इनका देहान्त हो गया, तब मंगोलियन पीपल्स रिपब्लिक (मंगोल जातिका प्रजातन्त्र) स्थापित हुआ।

नवम्बर १९२४ में मंगोल लोगोंने जो शासन पद्धति स्थापित की, वह सोवियत ढंगकी थी। इसके अनुसार १८ वर्षसे अधिक वयके स्त्री-पुरुषोंको मताधिकार मिला हुआ है और ये 'ग्रेट हुरलडान' का निर्वाचन करते हैं। इसका एक अधिवेशन प्रतिवर्ष अवश्य होता है। यह ३० मेम्बरोंकी शासन-सभाको चुनता है जो 'लिटिल हुरलडान' कहाती है और अपने शासनके लिये ग्रेट हुरलडानके सामने उत्तरदात्री है। फिर यह अपने मेम्बरोंमे ५ मेम्बरोंका बोर्ड चुनती है जो राज-कार्य चलाता है।

१८३२ में बाहरी मंगोलियाकी जनसंख्याका अनुमान था ५४००००। इनमें षष्ठांश अर्थात् ९० हजार रूसी और ५००० चीनी थे। मंगोल केवल पशुपाल ही हैं और अनुमान लगाया गया है कि १९२८ में इनके पास १३४०००० घोड़े, २७०००० ऊँट, १३ लाख गाय बैल और १०६०००० भेड़ें थीं। देशमें सोनेकी खानें भी हैं। अन्य चीजोंकी खानें भी हैं, पर इनका मूल्य अनिश्चित है। ऊन, खाल और रोयें सोवियत संघको अधिकतर भेजे जाते हैं।

यातायात कारवाँद्वारा होता है। १९२६ में रूस और बाहरी मंगोलियामें एक शर्तनामा (समय) चीतामें हुआ तो था, पर कार्यान्वित नहीं हुआ। स्टीमर और हवाई जहाज भी वहाँ चलते हैं। रूससे तार भी आते जाते हैं तथा उर्गामें बेतारके तारका स्टेशन भी है। चाँदीका सिक्का चलता है जो अमेरिकाके सोनेके डालरके आधे दामका होता है। यह १०० भागोंमें बँटा है। नोट चलते हैं और बैंक भी है। पौने दो लाख (मेक्सिकोके) डालरकी पूँजीसे मंगोल बैंक स्थापित हुई थी जिसकी पूंजी अब कोई ३० लाख डालर है। इसमें आधी पूँजी रूसकी स्टेट बैंक भी है।

भीतरी मंगोलियाका सम्बन्ध जापानसे है। भीतरी मंगोलिया बाहरी मंगोलियाके दक्षिण है। पहले चहार, सुइयुआन, जीहोल और निंघसिया ये चार प्रदेश ही भीतरी मंगोलियामें थे। १९२९ के पहले इस भूभागका शासन 'स्पेशल ऐडमिनिस्टेटिव एरियाज' (विशेष शासन क्षेत्र) पद्धतिपर होता था। इस वर्ष पुनर्व्यवस्था हुई और ये प्रदेश बन गये तथा भीतरी मंगोलिया नाम नकशोंसे हट गया। कई वर्ष बाद जापानी मंचूकोमें क्या जमे, वहाँसे भीतरी मंगोलियामें भी फैल गये और अन्तको उसे हड़प गये। २२ नवम्बर १९३७ को जापानने मेंगच्चियांग [मंगोल सीमान्त भागकी संघबद्ध समितिका फेडरेटेड कौन्सिल आव दि मंगोल बार्डर लैंड] बनायी और उसको इन तीन तथोक्त संघोंके निरीक्षकका काम सौंपा :—[१] मंगोलियाके संयुक्त संघकी संघबद्ध स्वराज्य सरकार जिसकी राजधानी होहोहोता थी; [२] चीन पाई या उत्तर शान्सीकी संघबद्ध स्वराज्य सरकार, जिसकी राजधानी तावतुंग थी; और [३] चानान या दक्षिण चहारकी संघबद्ध स्वराज्य सरकार, जिसकी राजधानी कालगनमें थी। १९३९ में मेंगच्चियांगकी पुनर्व्यवस्था हुई और उसका नाम रखा गया फेडरल आटोनामस गवर्नमेंट आव मंगोलिया। इसका क्षेत्रफल २० लाख वर्गमील और जनसंख्या ५० से ७० लाख है।

मंगोलियन बौद्ध हैं और तिब्बतके लामाओंके सम्प्रदायके अनुयायी हैं। मंगोलियन लामा उर्गा और दूसरे शहरोंमें रहते हैं।

तन्नू तूवा

तन्नू तूवा तुवी वा तुवीनी लोगोंका स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य है, पर इसका संरक्षक सोवियत रूस है। इसके उत्तर, पूर्व और पश्चिम तो साइबेरिया है, पर दक्षिण बाहरी मंगोलिया है। पहले युरियानखाई (आजका तन्नू तूवा) बाहरी मंगोलियाका भाग ही समझा जाता था, पर १९११ के विद्रोहसे वह स्वतंत्र हो गया। रूसी लोग वहाँ १८७० से बसने लगे थे और इसलिये जारशाहीने उसका दावा किया। वह बाहरी मंगोलियामें शामिल नहीं किया गया और कुछ समयतक नाममात्रकी स्वतन्त्रता भोग करके १९१४ में प्रथम महासमरके आरम्भमें रूसकी संरक्षकतामें आ गया और साइबेरियाके अलटाइ प्रदेशके उसिंस्क जिलेका ही एक भाग बन गया। रूसी गृह-युद्धके समय उरियानखाई चीनके अन्तर्गत हो गया, पर जब सोवियतने उर्गापर अधिकार कर लिया, तब तन्नू तूवा नामसे वह स्वतंत्र प्रजातंत्र घोषित किया गया। चीन सरकार और मंगोल प्रजातंत्र सरकारने बाहरी मंगोलियासे इसके पार्थक्यका प्रतिवाद किया और इसकी स्थितिका निर्णय करनेको एक संयुक्त कमीशन नियुक्त हुआ। १९२६ में बाहरी मंगोलिया और तन्नू तूवामें मित्रताकी सन्धि हो गयी।

१९२४ में इसकी शासनपद्धति भी बाहरी मंगोलियाकी पद्धतिके ढंगपर ही बनी। सारी शक्ति बड़े हुरलडानमें केन्द्रित हुई। इसके निर्वाचनका अधिकार २२ वर्षकी वयके नागरिकोंको मिला, जिनमें उच्च सरदारों और लामा वा पुरोहित घरानोंके लोग नहीं रखे गये। इस बड़े हुरलडानका अधिवेशन वर्षभरमें एक बार छोटा हुरलडान चुननेके लिये होता है। इसमें ३० मेम्बर होते हैं। यह अपनी ओरसे एक प्रेसिडेन्ट

और शासकमण्डल चुनता है। छोटा हुरलडान व्यवस्थापक मंडल है और इसके अधिवेशन सालमें ४-५ बार होते हैं।

तन्नू तूवाका क्षेत्रफल ६४००० वर्ग मील और जनसंख्या ६५००० है जिसमें ५० हजार तूवीनी, १२००० रूसी और शेष चीनी और मंगोल हैं। तूवीनी तुर्की जातिके हैं और खान्दानी या चुने तुर्की सरदारोंद्वारा शासित होते हैं। तूवीनी बहुत करके पशुपाल और रूसी व्यापारी, किसान और सोनेका पता लगानेवाले है। यहाँ सोने और ऐस्बेस्टोजकी मिली हुई खाने हैं। यहाँसे बाल, चमड़ा और ऊनका निर्यात और यहीं तैयार माल-का आयात होता है। मुख्य नगर काइसिल चोट है जिसे रूसी क्रास्नी कहते हैं और जो पहले खेम बेलबर कहाता था। इसमें १००० मनुष्यों-का वास है।

सिनकियांग या चीनी तुर्कीस्तान

सिनकियांग या चीनी तुर्कीस्तान तिब्बतके उत्तर और मंगोलियाके पश्चिम तथा सोवियत संघकी दक्षिणपूर्वी सीमापर है। इसीमें काशगर और खोतान भी हैं जहाँसे होकर प्राचीन कालमें चीनका रास्ता था। यहाँके लोग बौद्ध हैं, परन्तु मुसलमानोंकी भी यहाँ अच्छी खासी बस्ती ही नहीं है, उन्हींकी संख्या अधिक है। इधर कुछ समय पहले चीनी पलटनों और मुसलमान कबीलों में युद्ध होनेके समाचार आ चुके है। बाहरी मंगोलियाकी अपेक्षा यहाँ सोवियतका प्रभाव कम है।

चीनकी संस्कृति

एशिया महाद्वीप संसारके महान् धर्मोंकी जन्मभूमि है। मूसाई (यहूदी), ईसाई और इस्लाम धर्मोंका जन्म अरब-फिलस्तीन और मदीनेमें हुआ। आर्य धर्म संसारको भारतने दिया, जिसका एक अंग जरतुश्तका पारसीक धर्म पारस वा ईरानमें विकसित हुआ और ईरानके अभ्युदयके समय यह यूरोपमें रोमतक पहुँच गया। चीनमें पहले वहींका कनफ्यूशस मत प्रबल हुआ और बादको भारतके संसर्गसे ताओ और बौद्ध मतोंका प्राबल्य हुआ। कालान्तरमें कनफ्यूशस, ताओ और बौद्ध मतोंके सम्मिश्रणसे चीनमें एक नवीन धर्मका आविर्भाव हुआ। यों तो चीनमें ईसाई और मुसलमान दोनो धर्मोंके अनुयायी भी हैं, तथापि इनपर भी मिश्र धर्मकी छाप है। मुसलमान सभी प्रदेशोंमें हैं और इनकी संख्या ५० लाखसे १ करोड़तक है। ईसाइयोंमें रोमन कैथोलिक अधिक हैं। परन्तु प्रोटेस्टैंट और रूसी आर्थोडक्स चर्चके अनुयायी भी हैं। साधारणतः चीनी बौद्ध धर्मावलम्बी हैं, क्योंकि ईसाइयों और मुसलमानोंकी गिनती तो हो सकती है, परन्तु बौद्धोंकी नहीं हो सकती। फिर भी, चीनी बौद्ध धर्म भारतीय बौद्ध धर्मसे इस अंशमें भिन्न है कि उसपर वहाँके कनफ्यूशस और ताओ मतोंकी गहरी पुट है।

चीनके इतिहासका पता ३००० वर्षोंसे मिलता है। भारतीयों अथवा यों कहिये कि हिन्दुओंकी भाँति उनमें सांस्कृतिक एकता है। हिन्दुओंकी भाँति वे भी दुःखको कर्मभोग समझकर ही काटते हैं। चिन्ता और कष्टके समय भी वे प्रसन्न रहते हैं यह उनकी विशेषता है। सात वर्षोंके युद्धमें नाना प्रकारके कष्ट झेलनेपर भी उनके चेहरोंपर उदासी नहीं दिखाई देती। हमारे देशमें अनेक लिपियाँ और भाषाएँ हैं—बोलियोंकी तो कुछ न पूछिये; परन्तु चीनमें अनेक बोलियोंके रहते लिपि एक ही है

और सभी चीनी इसका व्यवहार करते हैं। चीनी लिपि चित्रात्मक होती है। किसी वस्तु वा भावकी चर्चा करनी होती है, तो उसका चित्र बना देते हैं। यदि चित्रमें कोई स्त्री द्वारपर झींकती दिखाई देती है, तो उसका अर्थ ईर्ष्या वा गृहकलह होता है। बच्चेको गोदमें लिये हुई स्त्रीका चित्र प्रसन्नताका चिह्न है। कजिया या चबाव दिखानेको घरमें तीन स्त्रियोंकी बातचीतका चित्र बनाया जाता है।

चीनमें राजनीतिक एकता यद्यपि बहुत प्रारम्भसे ही थी, तथापि यह वैसी ही थी, जैसी भारतमें मुगल बादशाहतमें। प्रदेशोंको यद्यपि बहुतसे अधिकार थे, तथापि अफसर उन्हें केन्द्रीय सरकार ही भेजती थी। चीन काजलकीसी कोठरी है। इसमें जो घुसता है, वही काला अर्थात् चीनी हो जाता है। तातारी और मंचू भी चाल ढाल, रीति नीतिमें तथा भावों और विश्वासोंमें चीनी हो गये। चीनकी सभ्यता नगरोंकी नहीं, ग्रामोंकी है। भारतकी भाँति कृषि ही वहाँके लोगोंका मुख्य व्यवसाय और अवलम्ब है। बारह आने लोग खेतोंपर ही रहते भी हैं। वे गोमांस नहीं खाते और दूध भी बहुत कम पीते हैं। खेतोंमें खाद देनेसे चीनका पानी खराब हो गया, इसलिये लोग उबाला पानी पीने लगे। परन्तु गर्म पानी पीनेमें सुस्वादु नहीं होता, इसलिये चीनियोंने उसमें स्वाद लानेके लिये चायका पता लगाया। यूरोपके व्यापारियोंने चायका व्यापार चीनसे करनेके साथ ही उसे अफीम खिलाना भी आरम्भ किया और इस प्रकार उसे अफीमची बनाया। चीनने ही कागज और छापेका आविष्कार किया था। यूरोपियन राज्योंने चीनके साथ बहुत बुरा सुलूक किया और उसके वर्तमान संकटोंका उत्तरदायित्व इन्हींपर है। चीनमें वर्ण वा जातिव्यवस्था नहीं है।

चीन और भारतका सम्बन्ध

चीन और भारतका सम्बन्ध बहुत प्राचीन समयसे है। मनुस्मृतिके अनुसार तो चीनीलोग व्रात्य क्षत्रिय ही हैं, क्योंकि उसके दसवें

अध्यायमें कहा गया है कि पौंड्र, ओड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश क्षत्रिय जातिके थे, परन्तु क्रियाके लोप और ब्राह्मणोंके अदर्शनसे वे वृषलत्वको प्राप्त हो गये।[1] यद्यपि आकृतिशास्त्रियोंके मतानुसार मुँह, नाक आदिकी बनावटके अनुसार चीनीलोग मंगोल जातीय हैं, तथापि यह भी विचारणीय है कि जलवायु आदिका प्रभाव भी आकृतिपर पड़ता है। नेपालियोंके तो आर्यजातीय होनेमें सन्देह ही नहीं है, फिर भी इनकी आकृति भारतवासियोंकी अपेक्षा चीनियोंसे अधिक मिलती है। और नेपालमें भी कहींके लोग गोरे तो कहींके काले होते हैं। मद्रास प्रदेशमें भी कहींके लोग बहुत काले, पर मलबारके अच्छे गोरे और सुन्दर होते हैं।

एक और श्लोक मनुस्मृतिमें आया है, जिसमें कहा गया है कि भारतके मध्यभागके ब्राह्मणोंसे पृथिवीमें सब मनुष्य अपने अपने चरित्र वा आचरण सीखें।[2] इससे स्पष्ट है कि भारतका मध्य भाग अन्तर्वेद आर्य-संस्कृतिका केन्द्र था और यहींसे संसारमें उसका प्रचार होता था। भारतसे जाकर बौद्ध धर्म ही संसारमें नहीं फैला, यहाँसे वैदिक धर्म जाकर भी देशान्तरोंमें फैला। कहते हैं कि ईस्वी सन्के पहले छठेसे चौथे शतक तक उपनिषदोंके गूढ़तत्त्व और योगके प्राणायाम और आध्यात्मिक आत्यानन्दका प्रचार भारतसे जाकर भारतीय और चीनी व्यापारियोंने किया था, परन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। स्व० अनगारिक

(१) शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता एते ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥
पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविडाः काम्बोज यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

(२) एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

धर्मपालने भारतमें बौद्ध धर्मके पुनरुत्थानके सम्बन्धमें बड़ा कार्य किया है। ये चीन और जापान आदिकी यात्राएँ कई बार कर चुके थे। इन्होंने बताया था कि पेकिंगमें विष्णु और गणेशकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं। इससे सिद्ध है कि पौराणिक मतानुयायियोंने भी अवश्य ही अपने मतका प्रचार किया था। मक्केके काबेमें ३६० मूर्तियाँ थीं और एक एक दिन सबकी पूजाका नियत था। उस समय अरब लोग मूर्तिपूजक थे। इस्लामके प्रवर्त्तक मुहम्मद साहबने सब मूर्त्तियाँ हटवा दीं, क्योंकि वे एकेश्वरवादके समर्थक थे। एक पत्थर जो 'संगे असवद' नामसे प्रसिद्ध है, वहाँ है जिसे हाजी लोग जाकर चूमते हैं। वे काबेकी परिक्रमा भी करते हैं। कहते हैं कि परिक्रमा करनेमें लोग इतनी दौड़ लगाते हैं कि राहमें बैठे बहुतसे ऊँट पिस जाते हैं।

आर्य धर्मका अति प्राचीनकालमें किन लोगोंने कब और किस प्रकार तथा कहाँ कहाँ प्रचार किया इसका पता हमें नहीं है, परन्तु बौद्ध धर्मका जब और जैसे जैसे संसारमें प्रचार हुआ है, उसका वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्मके प्रचारकोंका सिरमौर सम्राट् अशोक मौर्य था और उसीके प्रयत्नोंका फल है कि बौद्ध धर्म एक ओर शाम (सीरिया), मिस्र (ईजिप्ट) और मकदूनियाके राज्योंमें फैल गया और दूसरी ओर सिंहलद्वीपसे प्रशान्तके टापुओंपर प्रभाव डालता हुआ वह जापानतक पहुँचा और इस प्रकार पूर्वी देशोंको उसने भाईचारेके सूत्रमें बाँध दिया। श्री हरविलास सारडाने 'हिन्दू सुपीरियारिटी' नामक अपने ग्रन्थमें बौद्ध धर्मको दक्षिण अमेरिकातक पहुँचाया और लिखा कि ग्वाटेमाला गौतमालय है। अस्तु।

पहले चीन भी सामन्त राज्योंमें बँटा था। इनमें तसिन नामक एक सरदारने सामन्त राज्य तोड़कर केन्द्रीय शासनकी स्थापना की, जिससे सारा चीन एक शासनाधीन हो गया। हान जातिके शासक ईस्वी सन्‌के पूर्व तीसरे शतकमें हुए। इनका ध्यान भी चीन साम्राज्यकी अक्षुण्णता बनाये रखनेकी ओर रहा। उत्तर ओरसे होनेवाले मंगोलोंके आक्रमणोंसे

अपनी रक्षा करनेके लिये २२०० वर्ष पूर्व सम्राट् चिन शिह वांगतिने प्रसिद्ध 'बड़ी दीवार' बनायी और पश्चिमी सीमापर रहनेवाली जातियोंमें यूचेन्ससे मित्रताकी सन्धियाँ कीं। ये यूचेस लोग पहलेसे ही बौद्ध धर्मसे प्रभावित थे। ईस्वी सन्‌से २ वर्ष पूर्व यूचेस शासकोंने चीन सम्राट्को बौद्ध ग्रन्थ अर्पित किये थे। ऐतिहासिक प्रमाणोंसे इसी समयसे चीनके साथ भारतका सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित होता है। कहनेको तो ईस्वी सन्‌से पूर्व २१७ में तसिन वंशके शासनके समय ही चीन राजधानीमें बौद्ध प्रचारक पाये गये थे और एक चीनी जेनरलने भारतसे बुद्धकी स्वर्ण प्रतिमा मँगवायी थी। यह ईस्वी सन्‌से पूर्व १२१ की कथा है। परन्तु ये सब दन्तकथाएँ हैं और प्रमाणाभावसे विश्वसनीय नहीं हैं। हाँ, इसका पक्का प्रमाण है कि मध्य एशियामें बौद्ध शासन पहले ही पहुँच चुका था और यहींसे बुद्धकी मूर्त्तियाँ और उपदेश ईस्वी सन् ६१-६७ के पहले चीन पहुँचे थे।

सन् ६५ में हान वंशके सम्राट् मिंगतिने स्वप्नमें एक सुवर्ण प्रतिमा देखी थी और इसे मालूम हुआ था कि यह बुद्धमूर्ति है, तो बौद्ध धर्मोपदेशकोंको उसने बुलवाया। मिंगतिके शासनकालमें ही मोभरण और काश्यप मातङ्ग अपने साथ सफेद घोड़ेपर बुद्ध मूर्त्तियाँ और बौद्ध ग्रन्थ पहले पहल चीन ले गये थे। इनके लिये सम्राट्की आज्ञासे वहाँ 'श्वेताश्व विहार' तैयार किया गया। दोनो भिक्षुओंने चीनी भाषामें बौद्ध ग्रन्थोंका उल्था करने और बुद्ध सन्देशका प्रचार करनेमें अपना जीवन बिता दिया। ये उपदेशक तो मध्य एशिया होकर गये थे, परन्तु इसके प्रमाण हैं कि ईस्वी सन्‌के पूर्व दूसरे शतकमें आसाम और बर्मांके मार्गसे भी भारतके साथ दक्षिण चीनका व्यापार होता था। इस रास्तेसे भी बहुतसे उपदेशक चीन गये और पीछे तो मार्ग खुल जानेसे समुद्र मार्गसे भी लोग चीन जाने लगे।

ईस्वी सन्‌के दस शतकोंमें भारतीय उपदेशक बड़ी संख्याओंमें चीन

गये थे। इनमें मुख्य थे (तीसरे शतकके मध्यमें) धर्मरत्न ३८१ में संघभूति, ३८४ में गौतम संघदेव, ३९७ में पुण्यत्राता और इनका शिष्य धर्मयशः, चौथे शतकमें बुद्धयशः, ४०१ में कुमारजीव, ४०६ में विमलाक्ष, ४१४ में धर्मक्षेम, ४२१ में बुद्धभद्र, ४२३ में बुद्धजीव, ४३१ में गुणवर्मा, ४३५ में गुणभद्र, ५२० में बोधिधर्म, ५४१ में विमोक्षसेन, ५४६ में उपशून्य और परमार्थ, ५५९ में जिनभद्र और इनके गुरु ज्ञानभद्र तथा जिनयशः, ५९० में धर्मगुप्त, ६२७ में प्रभाकर मित्र, ६९३ में बोधिरुचि, ७१६ में शुभाकर सिंह, ७२० में वज्रबोधि और अमोघवज्र, और ९७३ में धर्मदेव धर्मका प्रचार करने चीन गये थे। चीनी इतिहाससे यह पता नहीं लगता कि ११ वें शतकके बाद भी भारतीय धर्मप्रचारक चीन गये थे या नहीं। न जानेके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि बौद्ध धर्मका विशेष प्रचार हो जानेके कारण वहाँ प्रचारकोंका प्रयोजन न रहा हो और दूसरा यह कि ११ वें शतकमें भारतमें बौद्धधर्मका ह्रास हो चुका था और वह विराट् हिन्दू धर्मका एक सम्प्रदाय बन गया था।

परन्तु यह बात बड़े मार्केकी है कि भारतसे ही धर्मप्रचारक चीन नहीं गये, चीनी जिज्ञासु भी भारत आये। इसका कारण यह हुआ कि भारतकी संस्कृतिने चीनकी आत्मामें घर कर लिया था और भारतीय प्रचारक अपने अपने प्रचार मुख्यतः भाषान्तरके कार्यमें ऐसे तन्मय हो गये थे कि उन्होंने इसे ही अपने जीवनका एक मात्र लक्ष्य बना लिया था। दूर और अपरिचित देशमें अपने चरित्रकी उत्कृष्टताके कारण ही वे श्रद्धाके भाजन हुए थे। चीनी बौद्धधर्मके एक पाश्चात्य आलोचकने लिखा है कि इन मुनियोंके भाषान्तरित और लिखित बौद्ध ग्रन्थोंके विशाल ढेरको जब कोई पढ़ता है, तो महाश्चर्य और आदरसे पूर्ण हुए बिना नहीं रह सकता; क्योंकि ये कोरे अनुवाद ही नहीं हैं, प्राचीन चीनी साहित्यके उच्चतम और उत्कृष्टतम ढंगपर इनकी रचना हुई है।

जो भारतीय मुनि पहले चीनके मन्दिरोंमें जाते थे और कोठरियोंमें बैठकर सावधानीसे सूत्रोंकी नकल करते थे, वे शाकाहारी और नियमित उपासक थे। वे पूर्ण धार्मिक थे और उनके जीवनका मुख्य कार्य परमतत्त्वमें मग्न रहना था। इनकी साधना देख मंगोल जातिके दिल पसीजे और इनके वैयक्तिक प्रभावसे चीनी मुनियोंका वह उत्तम दल उत्पन्न हुआ, जिसमें पवित्रताकी मर्यादाके साथ चरित्रकी उत्तमताका सम्मिलन था। यही आदर्श चीनी बौद्धोंके सामने रहा और मुनियोंको प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने व्यावहारिक रूप दे दिया। चीनी भाषामें अनेकों बौद्ध ग्रन्थों के भाषान्तर हैं, जिनके मूल लुप्त हो गये हैं। यदि भारतीय और चीनी पण्डितोंका सहयोग हो और वे शोध करें, तो मूल ग्रन्थोंका उद्धार हो सकता है।

जब कोई धर्म या मत बहुत फैल जाता है, तब स्वभावतः उसमें झगड़े और साम्प्रदाय उठ खड़े होते हैं। चीनमें बौद्ध धर्मके सम्बन्धमें जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई, तब सत्यका अनुसन्धान करने, मूल ग्रन्थ पढ़ने और भगवान् बुद्धके चरणोंकी रजसे पुनीत स्थानोंके दर्शन करने चीनसे अनेक मनीषी आये। ईत्सिंगने बताया है कि तीसरे शतकके मध्यमें बीस चीनी मुनियोंने भारतकी यात्रा की थी। एक गुप्त सम्राट्ने उनके लिये बोध गयामें एक विहार बनवा दिया था, जो चीनी सङ्घाराम कहाता था। इनमें सबसे उत्साही फाहियान (३९९-४१४ ई०में स्थल मार्गसे आये और समुद्र मार्गसे लौटे। ची मांगने ४०४-४२४ ई० में, सुंग यूनने ५३० ई०में, ह्यूनत्सांगने ६२९-६४५ ई०में, वांग ह्यूआनत्सोने ६३४-६४७ ई०में और ईत्सिंगने ६७१-६८५ ई०में भारतकी यात्रा की थी। वांग ह्यूआनत्सोने बादको भारतकी कई यात्राएं कीं। इनके सिवा भी जो आये, उनमें ह्यूआनत्सांग सर्वश्रेष्ठ है। ये तो मानो चीन-भारतके सांस्कृतिक सहयोगकी मूर्ति हैं। इनकी यात्राका वर्णन आजकल सबके लिये लोकप्रिय श्रेष्ठ साहित्य बन गया है।

ह्यू आनत्सांग ६२२ में पूर्ण भिक्खू बन गये थे और ६२९ में भारत के लिये चल पड़े थे। यात्राके आरम्भमें उन्होंने यह प्रार्थना की थी, "इस यात्रामें मुझे न धनका लोभ है और न प्रशंसा या कीर्तिका। मेरा एक मात्र उद्देश्य उच्चतर ज्ञान और सच्चे धर्मका उपार्जन करना है। हे बोधिसत्त्व, तुम्हारा हृदय जीवनके कष्टोंसे प्राणीके उद्धारके लिये सदा व्यग्र रहता है और मुझसे घोरतर कष्ट क्या किसीने भोगे हैं? क्या तुम उन्हें नहीं देख सकते? भारतमें ह्यू आनत्सांगने १६ वर्ष बिताये, उत्तर-दक्षिणकी यात्रा की, शक्तिमान् भारतीय नरेशों—कनौजके सम्राट् महाराज हर्ष और कामरूप, आसामके राजा भास्कर वर्मासे परिचय प्राप्त किया। नालन्दा विश्वविद्यालयमें धर्मपालके शिष्य शीलभद्रके नीचे काम किया। धर्मपाल प्रसिद्ध नैयायिक दिङ्नागके शिष्य थे, जिन्हें असंग और वसुबन्धु जैसे महाध्यापकोंसे शिक्षा मिली थी। ह्यू आनत्सांगने विज्ञानवादके सिद्धान्तका गम्भीर अध्ययन किया था।

खोतानकी राहसे ह्यू आनत्सांगने लौटनेपर सम्राट्को एक प्रार्थनापत्र भेजा था। इसमें उन कारणोंका उल्लेख तो था ही जिनसे वे सम्राट्की अनुमतिके बिना ही लम्बी और कठिन यात्रापर निकल पड़े थे, साथ ही यह भी लिखा था कि यदि ज्ञानकी खोजमें हम दूरकी यात्रा करनेवाले मनीषियोंकी प्रशंसा करते हैं, तो जो बौद्धधर्मके लाभप्रद गुप्त चिह्नों और त्रिपिटकके आश्चर्यजनक शब्दोंकी खोज करते हैं, वे संसारके बन्धनसे लोगोंको छुड़ानेमें कितने समर्थ हैं? हम ऐसे परिश्रमका मूल्य घटानेका साहस कैसे कर सकते हैं कि उत्साहपूर्वक उनका आदर न करें? मैं ह्यू आनत्सांग बुद्धदर्शनमें बहुत पहलेसे कुशल हो चुका हूँ, जो पश्चिमी जगत्को भगवान्ने प्रसार स्वरूप दिया है और जिसके नियम और उपदेश पूर्वमें अपूर्ण रूपमें पहुँचे हैं, सदा सत्य ज्ञानकी खोज निकालनेके उपायपर विचार करता रहा और कभी अपनी वैयक्तिक रक्षाकी चिन्ता नहीं की। इसके अनुसार चेंगकुआन (६३० ई०) के युगके तीसरे वर्ष-

के चौथे महीनेमें विपद् और बाधाओंकी कोई परवा न कर मैं गुप्त रूपसे भारत पहुँच गया। मैंने रेतीले लम्बे मैदानोंकी यात्रा की, हिमाच्छादित ढालू पर्वतशृङ्गोंपर चढ़ा और लोहेके फाटकोंके लम्बे दर्रेसे होता हुआ गर्मसागरकी क्षुब्ध लहरोंके पाससे निकला। इस प्रकार मैंने ५०००० ली (१ ली = आध मील) की यात्रा की। आचार विचारोंमें मैंने वहाँ जो हजारों भेद देखे, उनके रहते हुए भी मुझे जो लाखों आपदाओंका सामना करना पड़ा, मैं बिना किसी दुर्घटनाके ईश्वरकी कृपासे स्वस्थ शरीरसे लौट आया और अपने व्रतका उद्यापन करनेसे मनको जो सन्तोष हुआ है, उससे आपको अपनी सेवाञ्जलि अर्पण करता हूँ। मैंने गृध्रकूट पर्वतको देखा और बोधिद्रुमकी पूजा की। मैंने ऐसे चिह्न देखे जो पहले नहीं देखे गये थे और पवित्र वचन सुने जो पहले नहीं सुने गये थे। अद्भुत आध्यात्मिक विषय देखे जो संसारके सब आश्चर्योंसे बढ़कर हैं अपने सम्राट्के उच्च गुणोंका साक्ष्य दिया और उनके लिये प्रजाका उच्च आदर और प्रशंसा अर्जन की।'

सम्राट्ने कृपापूर्वक इस अभिनन्दन पत्रकी प्राप्ति स्वीकार की और खोतानमें अपने अधिकारीको आदेश दिया कि प्रख्यात यात्रीकी सहायता करे। जब ह्यूआनत्साङ्ग चीन पहुँचे, तब सम्राट्ने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया। उनकी भारतयात्रा और इसके बाद बौद्ध धर्मके लिये उन्होंने जो काम किया, उससे चीनी लोगोंमें भारतीय संस्कृतिके प्रति बहुत अनुराग उत्पन्न हो गया। कहाँ तो पुराने यात्रियोंकी यह लगन और धर्मभाव थे कि यात्राके कष्टोंकी कोई परवा न कर वे सत्यके अन्वेषणमें तत्पर हो जाते थे और कहाँ यात्राके सुलभ साधनोंकी वृद्धिके साथ ही उन भावोंका लोप हो गया। शारीरिक क्रूरता घट गयी, पर मानसिक बढ़ गयी।

राजनीतिक विपर्ययके कारण दोनों देशोंमें विद्वानोंका गमनागमन बन्द ही हो गया। परन्तु चीनके प्रति भारतकी सहानुभूतिमें कमी नहीं हुई। भारतसे चीनको जो अफीम जाती थी, उससे भारतवासी लज्जित थे, पर

व्यवस्था दूसरोंके हाथमें होनेसे मन मसोसकर रह जाते थे। भारत सरकार-की आयका बड़ा साधन अफीमका व्यवसाय भी था, परन्तु भारतीय देश-भक्त, जिनमें स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखलेका नाम अमर रहेगा, भारतकी इस कलुषित आयको त्यागनेके लिये सरकारको बराबर दबाते रहते थे और अन्तको सरकारको इस आयका मोह त्यागना पड़ा। १९११ में चीनमें प्रजातन्त्रकी स्थापनासे भारतको बड़ा हर्ष हुआ। चीनी क्रान्तिके नेता डा० सन यात सेनका नाम यहाँ श्रद्धासे लिया जाने लगा और कलकत्तेकी एक सड़कका नाम ही सन यात सेन स्ट्रीट उनके सम्मानमें रख दिया गया। १९२४ में चीन सरकारके निमन्त्रणपर यहाँसे स्व० कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर चीन गये थे, जिससे पारस्परिक सहानुभूतिमें वृद्धि हुई। चीन जापानके युद्धमें भारतकी सहानुभूति चीनसे ही रही और भारतवासियोंने इस युद्धके लिये जापानकी निन्दा भी की। उसके इस दुर्दिनमें पं० जवाहर लाल नेहरू चीन गये और संसारको दिखा दिया कि चीनके साथ भारतकी हार्दिक सहानुभूति है। व्यावहारिक सहानुभूति स्वरूप डा० अटलके नेतृत्वमें एक मेडिकल मिशन चीन भेजा गया। इस महायुद्धमें ही मार्शल-च्यांगकाई शेक सपत्नीक भारत पधारे थे और समयको देखते इनका अच्छा स्वागत हुआ था। अनन्तर माननीय ताई चि ताओ और डा० कूकी अध्य-क्षतामें कई वर्ष पहले एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल चीनसे भारत आया था, उससे भी चीन-भारतके सांस्कृतिक सम्बन्धमें उन्नति हुई है। विद्यार्थियोंका दोनो देशोंमें गमनागमन आरम्भ हो ही गया है और इसी प्रकार यदि शिक्षकोंका गमनागमन बढ़ा, तो दोनो देशोंमें अनुराग और हितकी बृद्धि अनिवार्य है। भारतसे हिन्दी पढ़ानेके लिये शान्ति निकेतनने एक शिक्षक भेजा है यह विशेष महत्त्वकी बात है। चीन जिन कठिनाइयों और संकटोंको पार कर रहा है, उनमें भारतकी सहानुभूति यहाँ चीन दिवस मनाकर दिखायी गयी। १९४४ में चीनके निमन्त्रणपर डा० सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् चीन पधारे थे।

चीनका धर्म

ईसाइयों और मुसलमानोंको छोड़कर चीनी लोग जिस धर्मको मानते हैं, उसीको चीनका मुख्य धर्म कहना चाहिये। यह धर्म कनफ्यूशस और लाओ-त्जूके विचारोंके साथ भारतीय बौद्धधर्मके विश्वास और विचार मिल जानेसे उत्पन्न हुआ है। कनफ्यूशसके समय पश्चिमकी चौ और पूर्वकी शांग जातियोंके विश्वासोंका सम्मिश्रण हो चुका था। शांग लोग शकुनपरीक्षापर विश्वास करते थे और चौ लोग शांगति अथवा ताओ तियन वा स्वर्ग वा ईश्वरकी पूजापर। चौ वंशके नेताओंने ताओपर ज़ोर दिया, क्योंकि उनके मतानुसार यह प्रकृतिकी रुचि और व्यवस्थापित्वमें जीवनका प्रकार था। वे समझते थे कि ताओकी पूजा करना स्वर्ग वा ईश्वरकी कृपा प्राप्त करना है। पहले स्वर्गका अर्थ समझा जाता था स्वर्गमें निवास करनेवाले व्यक्ति। शांगति चीनका आदि पुरुष था, इसलिये बादको स्वर्गका अर्थ हुआ वे पूर्वपुरुष जो शांगतिकी अधीनतामें स्वर्गमें रहते हैं। शांगतिको स्वर्ग वा देवलोकका राजा देवराज वा इन्द्र समझ सकते हैं, क्योंकि कालान्तरमें शांगति ही तियन वा स्वर्ग समझा जाने लगा। यों स्वर्ग शब्दका प्रयोग आकाश, परमेश्वर, प्रकृति, नैतिक नियमों और मानवरूपी देवताके लिये भी होता है। जगत् सम्बन्धी व्यवस्था ताओ है जो स्त्रीपुरुष, द्यावापृथिवी और प्रकाशान्धकारके द्वैध रूपोंसे कार्य करती है। जब ये मेलसे रहते हैं, तब सब व्यवस्था ठीक रहती, है पर जब इनमें ३ और ६ का सम्बन्ध हो जाता है, तब विपत्ति आती है।

ईसाके पूर्व ६ ठे और ५ वें शतकोंमें चीनमें अराजकता उत्पन्न हो गयी थी, जिससे विचारवान् बहुत उद्विग्न हुए थे। उन्होंने सामाजिक सामञ्जस्यको फिर स्थापित और सामाजिक उन्नति करनेके लिये यत्न किये। जो कई विचारधाराएं उत्पन्न हुईं, उनमें दो मुख्य थीं एक कनफ्यूशसकी

और दूसरी लाओत्जूकी थी । ये दोनों चीनके प्राचीन धर्मके दो पहलू थे। कनफ्यूशसने सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थापर जोर दिया और लाओत्जूने वैराग्य और रहस्यवादपर। पर साधारणलोग पुराने मूढ़ विश्वासों, निर्जीवोंमें भी आत्माके सद्भाव और जादूको ही अपनाये रहे। चीनी जनताका प्रचलित धर्म अब भी यही है। कनफ्यूशस और लाओत्जू दोनोंका विश्वास था कि प्राचीन युगोंमें लोगोंमें भाई भाईकासा व्यवहार प्रचलित था और धनी लोग निर्धनोंको चूसते न थे। उनकी समझ थी कि प्राचीन राज्य सुव्यवस्थित थे। परन्तु दोनोंमें एक मुख्य बातपर मत-भेद था और वह प्राचीन समयकी रीतिनीति और पन्थाकी व्याख्या थी। कनफ्यूशसने समाज सुधारका नैतिक ढंग अपनाया और कहा कि जब मनुष्य मनोविकारोंके कारण कर्त्तव्योंका उल्लङ्घन करते हैं, तब समाज अराजक बन जाता है। यदि शासक अच्छा दृष्टान्त सामने रखें, तो हम आराजकता रोक सकते हैं। कनफ्यूशसको यथा राजा तथा प्रजा अथवा 'राजा कालस्य कारणम' का नैतिक सिद्धान्त मान्य था। इसपर कनफ्यूशसको इतना विश्वास था कि वे कहते भी थे कि यदि कोई शासक मेरे कहेपर चले, तो मैं सालभरमें कुछ बहुत बड़ा काम कर सकता हूँ और तीन वर्षोंमें तो अपनी आशाएं भी पूरी कर सकता हूं। पर लाओत्जू राजकीय नियंत्रण किसी रूपमें नहीं चाहते थे। वे कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य विश्वके भावसे मिल जाय और सामाजिक बन्धनोंसे न घबराय, जो निरन्तर कटु और जटिल होते जाते हैं। लाओत्जू अध्यै और व्यक्तिवादके समर्थक थे, पर कनफ्यूशस इनका खंडन करते थे।

कनफ्यूशस

यों तो लाओत्जू कनफ्यूशससे ५३ वर्ष बड़े थे, क्योंकि परम्पराके अनुसार उनका जन्म ईस्वी सन्से ६०४ वर्ष पूर्व हुआ था और कनफ्यू-शसका समय ईस्वी सन्से ५५१ से ४७९ वर्ष पूर्व माना जाता है, तथापि

कनफ्यूशसका उपदेश चीनकी प्राचीन विचारधारासे ओतप्रोत था, इस-लिये कनफ्यूशसके मतको चीनके धर्मकी भूमि वा आधारशिला कहना चाहिये। ऐसी अवस्थामें लाओत्जूके ताओ मतके पहले कनफ्यूशसके उपदेशका ही वर्णन करना उचित होगा।

कनफ्यूशसके सिद्धान्तोंके तीन भाष्यकार हुए हैं, जिनमें सर्वप्रथम तो स्वयं कनफ्यूशस ही हैं। इनके बाद मेनसियसका नम्बर है जो दूसरे ऋषि समझे जाते हैं और जिनका समय ईस्वी सन्‌से पूर्व ३७२—२८९ वर्ष है। तीसरे च्यूहसी हैं, जिनका समय ११३० से १२०० ईस्वी है। ये कनफ्यूशस शास्त्रके बड़े भाष्यकार माने जाते हैं। जैसा सब देशोंमें होता है, कालान्तरमें सम्प्रदाय उत्पन्न हो जाते हैं। चीनमें कनफ्यूशस मतके आठ सम्प्रदाय ईस्वी सन्‌से पूर्व तीसरे शतकमें बन चुके थे और ये सभी कहने लगे थे कि कनफ्यूशसका उपदेश एकमात्र हमारे ही पास है अर्थात् कनफ्यूशसका मत हमी ठीक ठीक समझते हैं, कोई और नहीं। यह वैसी ही बात है जैसे गीतापर जितने भाष्य हुए हैं, सबके लेखकोंका दावा है कि गीताका वही अर्थ ठीक है, जिसे वे ठीक बताते हैं। मोत्जूभी अच्छे विद्वान् ईस्वीपूर्व चौथे शतकमें हो गये हैं। यद्यपि ये कनफ्यूशसके मतानुयायी न थे, तथापि मेनसियस और अन्य लेखकोंपर इनका बड़ा प्रभाव पड़ा है।

कनफ्यूशसका उपदेश

कनफ्यूशसका सिद्धान्त था कि मनुष्योंकी पारस्परिक स्वाभाविक सहानुभूति ही समाजकी भलाईका आधार है। यह सहानुभूति पहले कुटुम्ब-में प्रकट होनी चाहिये, फिर वहांसे धीरे धीरे उनतक पहुँचनी चाहिये, जो बहुत दूर हैं। अभिप्राय यह कि पहले घरसे आरम्भ करके क्रमशः भाइयों और देशसे सहानुभूति और प्रेम होना चाहिये। इसमें 'विधि' वाक्य है, परन्तु सच पूछा जाय तो यह मनुष्यका स्वाभाविक धर्म है। जो

जितना ही निकट होता है, उससे उतनी ही स्वाभाविक सहानुभूति होती है। कनफ्यूशस मातृपितृभक्ति, कुटुम्बसे प्रेम, राज्यनिष्ठा और पड़ोसियोंसे प्रेमका उपदेश देते हैं। जब प्रत्येक मनुष्य कर्त्तव्य पालन करता है, तब समाज सुव्यवस्थित रहता है। जब समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने विशेष कर्त्तव्यका पालन करता है, तब हमें महाप्रजाराज्य मिलता है। जब महा सिद्धान्त प्रबल रहेगा, तब स्वर्गके नीचे सभी सामान हितके लिये कार्य करेंगे। चुन चुनकर पुण्यशील मनुष्य अधिकारारूढ़ किये जायँगे और योग्य व्यक्तियोंको उत्तरदायित्व सौंपा जायगा। उस समय निरन्तर निष्कपटताका व्यवहार होगा और मेल ही नियम होगा। फलतः मनुष्य केवल अपने ही माता पिताका प्यार न करेंगे और अपने ही बच्चोंकी चिन्ता न करेंगे। सब वृद्धोंको अन्नवस्त्र मिलेगा और सब जवानोंको काम। शिशुओंका भरण-पोषण होगा, विधवाओं और विधुरों, पितृहीनों तथा अविवाहितों, अपाहिजों और बीमारों सबकी देखभाल होगी। पुरुषोंको अधिकार और स्त्रियोंको घर मिलेंगे। कोई चीज बर्बाद न होने पावेगी और न व्यक्तिगत प्रभुत्वके लिये उन्हें जमा करनेका ही प्रयोजन होगा। कोई शक्ति व्यक्ति-विशेषके शरीरमें ही न रहनी चाहिये और न वैयक्तिक लाभके लिये उसका उपयोग ही होना चाहिये। इस प्रकार स्वार्थका अन्त हो जाता है और चोरी तथा उपद्रव निर्मूल हो जाते हैं। इसलिये मकानोंके फाटक कभी बन्द नहीं किये जाते। यही व्यवस्था महाप्रजाराज्य कहाती है। संसारमें इस महाप्रजाराज्यके समान न पाश्चात्य प्रजासत्ता राज्यपद्धति है और न रूसी सोवियत पद्धति। वास्तविक प्रजातन्त्र यही है। इसमें न तो वर्त्तमान समाजी-करणका ढोंग है और न लोगोंके सामने नयी दुनिया पैदा करनेका करिश्मा।

कनफ्यूशसने समाजके विभिन्न सदस्योंके कर्त्तव्य नहीं बताये हैं, क्योंकि अपनेको बुद्धकी तरह वे नये धर्मका संस्थापक नहीं कहते थे, पुरानेका प्रचारक ही बताते थे। उनका कहना था कि मैं प्राचीनताका प्रेमी और उसपर विश्वास करनेवाला हूं। इसीलिये उन्होंने प्राचीन

सामाजिक और राजनीतिक आदर्शोंको धर्मशास्त्रका रूप दिया, जिसमें शारीरिक शुद्धता और सामाजिक कर्त्तव्योंके नियम ही नहीं हैं, वरञ्च धार्मिक विधि, संस्कारोंका आचरण और लोकान्तरित व्यक्तियोंके प्रति कर्त्तव्योंका वर्णन है। लीके धर्ममें मूसा और मनुस्मृतिकी भाँति अन्य विषयोंके साथ ही भक्ति और नैतिक नियंत्रणकी आवश्यकता बतायी गयी है। यही हिन्दुओंका व्यष्टि और समष्टि धर्म है। कनफ्यूशसका धर्म केवल नैतिक शास्त्र ही नहीं है, क्योंकि कनफ्यूशस ईश्वरकी पूजा, पुरखों, पृथिवीपरकी आत्माओं, तथा पहाड़ों और नदियोंकी भक्तिका उपदेश देते हैं। ये ही प्राचीन व्यवहार और आचरण थे जिन्हें कनफ्यू-शसने अंगीकार किया। उन्होंने ईश्वरको सबका शासक वा नियामक बताया है, जिसका आदर और पूजन सबको करना चाहिये। उसने संसार बनाया और मनुष्यकी विविध श्रेणियाँ ठहरायीं। उसके अधीन बहुतसी आत्माएं हैं, जो अपने अपने क्षेत्रोंमें आकाशमें और पृथिवीपर शासन करती हैं और मनुष्यकी रक्षा करती तथा उन्हें राह बताती हैं। समाजकी भलाईके लिये पुरखोंकी पूजा आवश्यक है। इस प्रकारके अध्यात्मज्ञानमें आत्माओं और देवताओंकी संख्या बढ़नेकी खासी जगह है। इसलिये कनफ्यूशस धर्ममें देवताओंकी बड़ी संख्या देखकर किसीको कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

शासक वा राजा ईश्वरका पुत्र माना जाता था और प्रजा तथा ईश्वरमें मध्यस्थ समझा जाता था। मनुस्मृतिने तो राजाको ईश्वर ही बना दिया, क्योंकि उसने लिख दिया कि 'महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति'। इसी प्रकार यूरोपमें राजाओंके 'ईश्वरदत्त अधिकार' (divine right of kings) की कल्पना हुई। चीनी लोग कृषक ही हैं, इसलिये उनका हित इसीमें है कि यथासमय ऋतुएं हुआ करें। यही कारण है कि पृथिवी अपनी बड़ी नदियों और पहाड़ों समेत भक्तिभाजन हो गयी। चीनियोंका मत है कि वंश एक और अविभाज्य है, इसलिये मनुष्यका

वंशाके साथ जो अनुराग रहता है, उसका अन्त मृत्युसे ही नहीं हो जाता।
पुरखोंकी पूजाका यही कारण है। पर यह सत्य है कि कनफ्यूशस स्वर्ग (ईश्वर) और देवताओंके ऊपरके इस अवास्तविक विश्वासपर जोर नहीं देते। बुद्धकी भाँति परमार्थ और अध्यात्म सम्बन्धी सूक्ष्मताओंपर विवाद नहीं करते। जब त्जीलूने आकाश और पृथ्वीपरकी आत्माओंकी पूजाके विषयमें पूछा, तब कनफ्यूशसने उत्तर दिया, 'हम तो अभीतक यही नहीं जानते कि मनुष्योंकी सेवा कैसे करनी चाहिये, तो आत्माओंकी सेवाके विषयमें कैसे जान सकते हैं ?' 'मृत्युके विषयमें आप क्या बताते हैं ?' जब यह प्रश्न किया गया, तब कनफ्यूशसने कहा 'अभीतक तो हम जीवनके विषयमें ही नहीं जानते, तो मृत्युके विषयमें कैसे जान सकते हैं ?'

यद्यपि कनफ्यूशस इस विषयका वादविवाद टालते रहे, परन्तु पर-जन्मको उन्होंने अस्वीकार नहीं किया, क्योंकि पुरखोंकी आत्माओंके पूजनकी उनकी आज्ञासे जान पड़ता है कि उनके मतसे मृत्युके उपरान्त भी आत्माओंका अस्तित्व है। महाश्चर्य, भुजबल, स्वेच्छाचार और अलौकिकपर वे वादविवाद नहीं करते थे। वे रीतिभाँतिका पालन करनेको इसलिये नहीं कहते थे कि उससे देवता प्रसन्न होंगे, प्रत्युत इसलिये कहते थे कि लोग सनातनसे ऐसा ही करते आये हैं। वे जानते थे कि मनुष्यके कार्यपर बाहरका कोई मनोवैज्ञानिक प्रभाव ठीक ठीक न पड़ेगा। जो सन्तों और मुनियोंद्वारा परम्परागत प्राप्त संस्कृति चली आयी है, उसका हमें आदर करना ही चाहिये।

कनफ्यूशसके मतानुसार भलाईका अर्थ ईश्वरके मार्गपर चलना है, जो हमें बल देता है। त्याग और शकुनपरीक्षा ईश्वरको प्रसन्न करने और उसकी इच्छाका निश्चय करनेके साधन हैं। कनफ्यूशस मतके संस्कारशास्त्रज्ञोंका कहना है कि त्याग बाहरसे आनेवाली कोई वस्तु नहीं है। वह कुछ वही वस्तु है, जो भीतरसे आती है ; क्योंकि हमारे हृदयोंमें ही वह (भाव) उत्पन्न होता है। जब हृदय विकल होता है, तब हम

उसे शास्त्रविधिसे सबल करते हैं। हसुनत्जूने एक पुराने लेखका हवाला देकर बताया है कि त्याग मनकी वह अवस्था है, जिसमें हमारे विचार बड़ी अभिलाषासे ईश्वरकी ओर लौटते हैं। वह भक्ति, प्रीति और श्रद्धाका चरम प्रकाशन है। जब कनफ्यूशस हमें 'शास्त्रविधि और सङ्गीत' को समझनेके लिये कहते हैं, तब उसे वे व्यक्तित्वके संस्कारका साधन मानते हैं। उनके मतानुसार सङ्गीत तो स्वर्गका वा अव्यक्तका प्रतिनिधि है और शास्त्रविधि पृथिवी वा व्यक्तका। जब कनफ्यूशस कहते हैं कि मनुष्यकी शिक्षा पद्यसे प्रारम्भ होनी चाहिये, नैतिक निरोधसे उसे बल मिलना चाहिये और उसका अन्त सङ्गीतमें होना चाहिये, तब उनका विश्वास रहता है कि इन सबका अभिप्राय मनुष्य-स्वभावका सुधार है। वैयक्तिक उद्योगपर उनका बड़ा जोर है। कनफ्यूशसधर्मके विश्वासका यह मूलाधार है 'मनुष्य ताओका विकास कर सकता है, ताओ मनुष्यका विकास नहीं करता।'

मनके विकास और विवेकके शासनपर कनफ्यूशसका विश्वास था, जिससे कभी कभी लोकाचारमूलक नीतिका संघर्ष हो सकता है। कनफ्यूशसका कहना है कि यथेच्छाचारी शासनके दण्डके भयसे लोग नियमोंका उल्लंघन भले ही न करें, पर अपना नैतिक ज्ञान तो खो ही देंगे। जो लोग धर्मतः शासित होते हैं और आत्मनिरोधके भीतरी नियमसे कानूनके अन्दर रखे जाते हैं, उनका नैतिक ज्ञान बना रहेगा और वे अच्छे भी रहेंगे।' और 'यदि कोई मनुष्य अपने हृदयका सुधार कर सकता है, तो शासनकार्यमें हाथ बटानेसे उसे कौन रोक सकता है? पर यदि वह अपने ही हृदयका सुधार नहीं कर सकता, तो दूसरोंको सुधारनेके काममें उसके पड़नेसे क्या लाभ?' और भी, 'जो मनुष्य भीतरसे धर्मशील है, उसकी जिह्वापर धार्मिक शब्द रहेंगे, पर धार्मिक शब्द बोलनेवाला मनुष्य सदा धर्मशील नहीं होता।'[१] जो मनुष्य भलाईसे

१ [illegible]

भरा होता है उसमें अवश्य साहस होता है, पर साहसी मनुष्य अच्छा ही होता है यह बात नहीं है। कनफ्यूशसके मतसे अच्छे मनुष्यमें नौ गुण होने चाहिये। स्पष्ट देखने और स्पष्ट सुननेकी इच्छा, दृष्टिमें दया, व्यवहारमें आदर, बोलनेमें विवेक और कामकाजमें तत्परता, सन्देहके समय जाँच करनेमें सतर्कता, क्रोधमें परिणामकी चिन्ता और लाभके अवसरपर कर्त्तव्यका विचार होना चाहिये। उन्हें इसका ज्ञान था कि स्वाधीनता निरङ्कुशता बन सकती है, इसलिये औचित्यपर ही उनका आग्रह था।

बुद्धकी भाँति कनफ्यूशसको भी नैतिकताकी विशेष चिन्ता थी, इसलिये ईश्वर-विषयक प्रश्नोंपर बहुधा चुप ही रहते थे। जो विश्वासका विषय है, वह अधिकरणनिष्ठाको उत्पन्न करता है। तार्किक विचारोंकी प्रवृत्ति तो सत्यकी प्राप्ति है, जो पदार्थनिष्ठ और सार्वत्रिक है। गूढ़ अन्तर्ज्ञान तार्किक विचारोंपर चढ़ जाता है और अधिकसे अधिक हमें विश्वास और भरोसा देता है, पर सत्य और निश्चयता नहीं देता। कनफ्यूशसने पहले ध्यानयोगका अभ्यास किया, पर बादको उनकी प्रवृत्ति तार्किक उपायोंकी ओर हो गयी। 'मैं ध्यान करनेके लिये सारे दिन भूखों रहा और सारी रात जागता रहा। यह सब व्यर्थ हुआ। इससे अच्छा है सीखना।' चूँकि अलौकिक सम्बन्धी विश्वास लोगोंमें भेद उत्पन्न करते हैं, इसलिये कनफ्यूशस उनपर जोर नहीं देते थे। उनमें एक विशेषता यह भी थी कि मनुष्यके ज्ञानकी सीमा मानते थे। पर हम यह नहीं कह सकते कि अत्यन्तकी गूढ़ताका उन्हें पता ही न था। द्योतक मौनसे उन्होंने मानव मनकी सीमा और ईश्वरी गूढ़ताकी ओर संकेत किया है। वर्णनातीत ईश्वरकी वास्तविकतापर उनका विश्वास था, जो प्राचीन समयसे चला आता था। हिन्दू धर्ममें जैसे ईश्वर विधाता, त्राता और संहर्त्ता माना जाता है, वैसे ही कनफ्यूशस उसे मानते थे। उसे वे सार्वत्रिक व्यवस्थाका रक्षक मानते थे, जो प्रत्येक वस्तुको देखता और उसका विचार करता है।

यही ऋग्वेदका वरुण और पारसियोंका अहुर मज्द है। कनफ्यूशसका उस शक्तिपर भी विश्वास था, जो धर्मकी सहायता करती और हमारे जीवनको रूप देती है।

कनफ्यूशसका यह विश्वास उनके वचनोंसे प्रकट होता है कि परमेश्वर कुछ अभिप्रायसे ही शासन करता है। आचार्यने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि मैं बिना बोले ही रहूँ।' इसपर त्जू कुंगने कहा, 'यदि महाराज कुछ न कहेंगे तो हम शिष्य औरोंको क्या बतावेंगे?' इसपर आचार्यने उत्तर दिया, 'परमेश्वरकी वाणी क्या है? चारो ऋतुएं यथासमय होती हैं और सब चीजें फूलती फलती हैं; फिर भी परमेश्वरकी वाणी क्या है?' कनफ्यूशस कहते हैं, 'ईश्वरका नियम शाश्वत है। तुम देखते हो कि सूर्यचन्द्र निरन्तर अपनी अपनी गतिसे चला करते हैं—यह ईश्वरका नियम है। बिना किसी यत्न या हस्तक्षेपके चीजें पैदा होती या बनती हैं—यह ईश्वरका नियम है। जब वस्तुएं पैदा की या बनायी जाती हैं, तब विश्व प्रकाशमान् होता है, यह ईश्वरका नियम है। संसारकी व्यवस्था और प्रगति ईश्वरके नियमके दृष्टान्त हैं। जो सद्‌गुण मुझमें है, उसे परमेश्वरने उत्पन्न किया है। चूंकि सत्यके इस कारणको नष्ट करनेके लिये परमेश्वर तैयार नहीं है, तो क्यूआंगके लोग मेरा क्या कर सकते हैं? यदि मैं यह बहाना करूं कि मेरे सेवक हैं, जब मेरे एक भी सेवक नहीं है, तो मैं किसे धोखा देता हूँ? जो परमेश्वरका अपराधी है, उसके लिये ऐसी कोई जगह नहीं बच जाती, जहाँ वह प्रार्थना करे।'

जब कनफ्यूशसका प्रिय शिष्य येन युआन मरा, तब आचार्य चिल्ला उठे, 'हाय परमेश्वरने मुझे वियुक्त कर दिया! परमेश्वरने मुझे वियुक्त कर दिया।' फिर उन्होंने कहा, '१५ वर्षकी वयमें मैंने ज्ञान लाभ करनेपर ध्यान दिया। ३० वर्षकी वयमें मैं दृढ़ रहा। ४० वर्षमें मैं सन्देहरहित हो गया। पचास वर्षमें मैं परमेश्वरकी इच्छा समझ गया।' कनफ्यूशसने कहा, 'श्रेष्ठ मनुष्य तीन बातोंसे डरता है। वह परमेश्वरकी

इच्छासे डरता है। वह महापुरुषसे डरता है। वह ऋषियोंके उपदेशोंसे डरता है।' जब वे बहुत बीमार हुए, तब उनके एक शिष्यने कहा कि मन्दिरमें जाकर प्रार्थना कीजिये, तो उत्तर दिया कि 'बहुत कालसे मैं प्रार्थना करता हूँ। मेरा सारा जीवन प्रार्थना ही था।' परमेश्वरकी इच्छाके अनुसार चलना उच्चतम प्रकारकी प्रार्थना है। मैं अनन्तके संसर्गमें रहा।

जब कनफ्यूशसने चिल्लाकर कहा 'हाय! मुझे कोई नहीं जानता, तब एक शिष्यने पूछा, 'इसका क्या अभिप्राय है', तो उत्तर मिला, 'मेरी असन्तोषध्वनि ईश्वरके प्रति नहीं है। मेरा असन्तोष मनुष्यके प्रति नहीं है। मेरा अध्ययन तो नीचा है, पर मेरा अर्थबोध ऊँचा है। परन्तु परमेश्वर है। वह मुझे जानता है।' कनफ्यूशस आत्माओंके संसारकी परिभाषाओं और विवादोंमें तो नहीं पड़े, परन्तु वे परम्परागत कर्त्तव्योंका भक्तिपूर्वक पालन करते रहे। जब उनसे पूछा गया, 'बुद्धिमानी क्या है' तो उत्तर दिया कि एकाग्रतासे मनुष्योंके कर्त्तव्योंका पालन करना और आत्माओंका आदर करते हुए उनसे अलग रहना इसे बुद्धिमानी कह सकते हैं।' यह कहकर भी वे मृतक लोगोंकी आत्माओंके लिये वैसे ही उत्सर्ग करते थे, मानो वे सामने उपस्थित हैं।

कनफ्यूशस वस्तुतः धार्मिक थे, क्योंकि उनमें उदारता, सामाजिक अवस्था सुधारनेकी चिन्ता और ज्ञानपिपासा थी। परन्तु वे सब बातोंमें अति नापसन्द करते थे। जब कोई बदनाम युवक शुद्ध मनसे उनके पास जाता, तो वे उसे अपना लेते थे[1] और जब उनके शिष्य उनकी बुद्धिमत्तापर सन्देह करने लगते, तो कहते 'तुम अपने विचारोंमें अति क्यों करते हो?' वे परम्परागत धार्मिक विचार मानते थे और आचारका

---

[1] अपिचेत्सुदुराचारः भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितोऽपि सः॥ गीताके इस श्लोकसे मिलाइये।

पालन करते थे। धार्मिक प्रश्नोंपर वे चुप इसलिये रहते थे कि कोई नयी बात नहीं बता सकते थे। वे सामाजिक दृष्टिकोण तो क्या चाहते थे, पर धार्मिक प्रवृत्ति नयी नहीं चाहते थे। वे समाजसुधारक थे और समझते थे कि समाज मनुष्यके लिये है और इसलिये मानवपर उनका विश्वास भी था। पर यह नहीं चाहते थे कि मनुष्य समाजके बाहर चला जाय। उनके धार्मिक विचार और आचार तथा सामाजिक और नैतिक विचार किसी पद्धतिके अंग न थे। उनका धर्म व्यवहारानुरूप था। उनकी उक्तियोंमें भक्तिका कोई चमत्कार न था। उनका मत था कि जीवनका मूल्य बनाये रहने और बढ़ानेमें ही भलाई है।

कनफ्यूशस कहते थे कि मुझे यह देखकर दुःख होता है कि सद्‌गुणकी प्रवृद्धि नहीं होती, ज्ञान स्पष्ट नहीं किया जाता और लोग कर्त्तव्यकी बातें सुनते तो हैं, पर उनके अनुसार चलते नहीं। इसका कारण यह है कि मनुष्यमें तामस भाव ही अधिक है, इसलिये उसे ज्ञान वा बोधिका कितना ही उपदेश क्यों न दिया जाय, वह उसे सुनभर लेता है, प्राप्त करनेका यत्न नहीं करता और प्रयत्नके बिना जहाँका तहाँ रह जाता है। कनफ्यूशसके मतानुसार मनुष्यका स्वभाव ईश्वरदत्त है। ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलना पुण्य है और उसके विपरीत आचरण पाप है। यदि हम पृथिवी-पर ईश्वरका राज्य स्थापित करना चाहते हों, तो हमें मनुष्योंमें ठीक ठीक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये।

मो त्जू

ईसासे ४७० से २९० वर्ष पहले मो त्जू हो गये हैं। ये कनफ्यूशससे वयः कनिष्ठ होनेपर भी उनके समसामयिक थे। ये कनफ्यूशस मतके इसलिये विरोधी थे कि उसमें अज्ञान और दैववाद है। शांगतिकी पुरानी पूजाका इन्होंने सुधार और प्रयोगका विस्तार किया है। ईश्वरके अस्तित्व और उसके संसार शासनपर इनका विश्वास था। आत्माओंके अस्तित्व और कार्यको

भी ये मानते थे। ये समझते थे कि ईश्वरकी इच्छा लोगोंसे यह चाहती है कि हम सर्वत्र सबलोगोंसे प्रेम करें। सार्वत्रिक प्रेम धार्मिक कर्त्तव्य है।

मो त्जू और कनफ्यूशसका मतभेद यहाँ स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि जहाँ कनफ्यूशसने प्रेमकी सीढ़ी बनायी है, वहाँ मो त्जूका प्रेम अबाध है। कनफ्यूशसके मतानुसार कुटुम्बसे और उसमें भी माता पितासे सर्वाधिक प्रेम करना और फिर घटते घटते परदेशियोंसे सबसे कम प्रेम करना चाहिये। मो त्जू इसपर कहते हैं कि यह तो विभिन्न लोगोंके लिये भिन्न भिन्न प्रकारका आचरण है। इसको वे ऐसे समझाते हैं कि जब कोई शासक पड़ोसी देशपर आक्रमण करता है, उसके निवासियोंको काट डालता है, उसके गाय बैल घोड़े और चावल ज्वार बाजरा ले जाता है और उनकी सारी सम्पत्ति लूट लेता है, तब तो उसका कृत्य बाँसके टुकड़ों और रेशमके मूठोंपर लिखा जाता है अथवा धातु या पत्थरपर खोदा जाता किंवा घंटों और तिपाइयोंपर अंकित किया जाता है, जो बादको उसके बेटों पोतोंतक पहुँचते हैं। वह शेखी बघारता है कि मेरी तरह किसीने लूट नहीं मचायी। पर मान लो कि कोई गृहस्थ अपने पड़ोसीके घरपर चढ़ जाय, उसके कुत्ते सुअर तथा अन्न वस्त्र चुरा ले और फिर बाँसके टुकड़ों या रेशमके मुट्ठोंपर उन्हें लिख रखे और अपनी तश्तरियों और बर्तनोंपर खुदा ले, जिसमें आनेवाली पीढ़ियोंतक पहुँचे और डींग हाँके कि मेरे जितना किसीने नहीं चुराया तो क्या यह ठीक होगा? लूके स्वामीने कहा, 'नहीं; और इसपर उसी दृष्टिसे विचार करनेपर जिससे तुमने उसे सामने रखा है, मैं देखता हूँ कि वे बहुतसी बातें जिन्हें संसार ठीक समझता है, बिल्कुल ठीक नहीं हैं। यह सच है कि जो संसार छोटे दोषको दोष कहता है और युद्ध जैसे महाअपराधकी प्रशंसा करता है, वह न्याय-अन्यायका सच्चा भेद ही नहीं समझता। परन्तु कनफ्यूशसने मनुष्यके प्रेमकी सीढ़ीकी जो कल्पना की है, वह मनुष्य स्वभावकी प्रवृत्ति और सीमाका ध्यान रखकर की है।

मो त्जूका यह विश्वास होनेके कारण कि मृत्युके बाद मनुष्य ज्ञानतः जीवित रहता है, वे मुर्दों और उन्हें समाधि देनेकी रीतियोंको महत्व नहीं देते थे। उनके सम्प्रदायका साधारण दृष्टिकोण कठिन और तपोमय था। उनके बाद जो आचार्य मेनसियस आये, वे उनके आलोचक तो थे, तथापि इन शब्दोंमें उनकी प्रशंसा ही की है। मो त्जू सब मनुष्योंसे प्रेम करते थे और मानवताके लिये अपनेको मिटा देनेको तैयार थे, क्योंकि अपने सेवा-कार्यमें उन्होंने कष्ट झेले और संगतिकरणके कार्यमें विरोधका सामना भी किया।

मेनसियस

मेनसियसने मो त्जूके इस सिद्धान्तका खंडन किया है कि संसारकी बुराइयोंको दूर करनेका एकमात्र उपाय सार्वत्रिक प्रेम है। एक दूसरे आचार्य यांगत्जू हो गये हैं। ये समाजके कार्योंसे उदासीन भाव रखनेके पक्षपाती थे और कहते थे कि उसके प्रत्येक कार्यसे अलग हो जाना चाहिये। कनफ्यूशसने सामाजिक और नैतिक मूल्योंकी जो बात कही है, उसके समर्थनमें मेनसियसने गूढ़ आदर्शवादका विकास किया है। उनपर चीन देशके ताओ मतका बहुत प्रभाव पड़ा था, और वहींसे उन्होंने प्राणायामकी प्रक्रियाएँ ले ली थीं, यद्यपि वे समझते थे कि नैतिक अनुशासनसे यह निम्नकोटिकी बात है। अति प्राचीन कालसे हिन्दू और चीनी लोग यह मानते आते हैं कि गम्भीर और नियमित प्राणायामसे मन शान्त होता है और उससे एकाग्रतामें सहायता पहुँचती है। कनफ्यूशसकी भाँति मेनसियस भी महाशक्ति मानते थे जिसे वे स्वर्ग वा ईश्वर कहते थे। वही कारणोंका कारण मूल कारण है। मनुष्यका स्वभाव ईश्वर-दत्त है और साररूपसे वह अच्छा ही है। बुरे कार्य हमारी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंके विरुद्ध हैं। प्रकृति, आत्माओं, पूर्व पुरुषों और कुल देवताओंकी पूजाके विषयमें मेनसियस कनफ्यूशसके समर्थक हैं। उनका विश्वास है कि

व्यक्तिकी आत्मा विश्वकी आत्माके साथ ही है। मनुष्य सूक्ष्म विश्व है। कठिन बेड़े लगाकर वह विश्वसे अलग नहीं कर दिया गया है। हममें सब चीज़ें पूरी हैं। ईश्वरका राज्य मनुष्यके अन्दर है। जिस कारणसे मनुष्य उस पूर्णसे अपनेको अलग समझता है, वह उसका अज्ञान है जिसका परिणाम स्वार्थपरता है। जब वह अपनी स्वार्थपरता छोड़ देता है, जब वह अपनी बाधाएँ दूर कर देता है और निःस्वार्थ प्रेमका विकास करता है, तब वह विश्वके साथ अपनी एकताका अनुभव करता है।

मानसिक क्रियासे इस एकताका अनुभव नहीं होता। मेनसियसने दो प्रकारके ज्ञानकी बात कही है, एक जो मानसिक क्रियासे उत्पन्न होता है और दूसरा जो आत्मप्रकाश है और मानसिक क्रियाओंको बन्द करनेसे उत्पन्न होता है। यही उपनिषदोंकी पराविद्या है। मेनसियसका कहना है कि अन्तर्ज्ञानोपलभ्य शक्तियोंको फिर पकड़ो जो जीवनके भारके कारण प्रगतिका अवसर नहीं पातीं। प्राणायाम, मानसिक धारणा और नैतिक अनुशासनके द्वारा हम आत्मिक तलतक उठ जाते हैं। शान्त ज्ञान आत्माकी प्रगतिका सर्वोत्तम सहायक है। न्याय अन्यायके सूक्ष्मबोधको ही मेनसियस ताओ समझते हैं। नैतिक दृष्टिसे वही बड़ा आदमी है जिसने अपना शिशु हृदय बना रखा है। मेनसियसका मत है कि सुख और दुःखके कर्ता हमी हैं और इसके समर्थनमें वे वह पद्य पढ़ते हैं जिसमें कहा गया है 'ईश्वरेच्छासे मेल रखनेका सदा यत्न करो और इससे महासुख प्राप्त करो। पूर्णसे एकताका अनुभव करनेमें मनुष्य अपनेको पूर्णका अंग समझता है। ऐसे जिस मनुष्यने एकताका अनुभव किया है, वह सारे संसारसे प्रेम करता है। मानव हृदयवाले मनुष्यका कोई वैरी नहीं होता। जहाँ कनफ्यूशस शासक वर्गके ईश्वरीय अधिकारका नैतिक समर्थन करते हैं वहाँ मेनसियस शासक वर्गसे विद्रोह करनेका समर्थन ही नहीं करते, वरञ्च कहते हैं कि जहाँ आज्ञापालनका अर्थ घातक अवस्थाओंका समर्थन करना है, वहाँ क्रान्तिका औचित्य है।

चूहसी

चेंग हाओ और चेंग ई दो भाई थे। पहलेका समय सन् १०३२ से १०८५ ईस्वी और दूसरेका १०३३ से ११०७ ईस्वी था। इन दोनों भाइयोंसे प्रभावित होकर चूहसीने कनफ्यूशसके उपदेशकी फिरसे व्याख्या की और बताया कि वह मनुष्यकी बौद्धिक उत्सुकता और आत्मिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति कर सकता है। चूहसीकी विशेषता यह थी कि परम्परापर जोर न देकर इन्होंने हेतुका हाथ पकड़ा। उनका कहना था कि सत्यकी जितनी खोज हम ठीक ढंगसे रहनेसे नहीं कर सकते, उतनी ठीक ठीक विचार करनेसे कर सकते हैं। इन्होंने ऐसे दर्शनकी उद्भावना करनेका यत्न किया है जिसमें हेतुवाद और रहस्यवादका सम्मिश्रण है। यद्यपि बौद्ध विचारोंकी इन्होंने आलोचना की है, तथापि उक्त विचारोंका इनपर प्रभाव भी पड़ा है। चूहसीका कहना है, 'हमें असार और दूरकी वस्तुओंका विचार करनेका प्रयोजन नहीं है। ताओकी वास्तविकता जाननेको हमें उसे अपनी प्रकृतिके अन्दर ही खोजना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यके अन्दर न्याय-धर्मका सिद्धान्त है, जिसे हम ताओ कहते हैं; यही सड़क है जिसपर हमें चलना चाहिये। मनुष्य और संसारकी प्रकृतिको समझाते समय चूहसी शुद्धात्मा वा परमात्मासे आरम्भ करते हैं, जो सब वस्तुओंका उद्गम और आत्मा है और नास्ति वा अभाव है जो विश्वका पदार्थनिष्ठ सामर्थ्य है।

कनफ्यूशसके पुराने मतके दो सम्प्रदाय थे। एक कहता था कि मनुष्यकी प्रकृति, जो परमात्माकी आज्ञासे निश्चित हो चुकी है, मूलतः अच्छी है और दूसरा कहता था कि वह बुरी है। चूहसीका कहना था कि मनुष्यमें दो सिद्धान्त रहते हैं। एक आत्मिक जो उसका मूल स्वभाव है और जो स्वभावतः अच्छा है और दूसरा भौतिक है जो व्यक्तित्वसे आत्माको परिच्छिन्न करनेके लिये आवश्यक है। यह पदार्थ गुणोंमें न्यूनाधिक

रहता है; कहीं वह अधिकतर घना और कहीं वह अधिकतर विरल होता है, कहीं अत्यधिक और कहीं अतिन्यून रहता है और ये विभेद ही मनुष्योंमें भिन्नताके कारण हैं। भौतिक पदार्थ ही अपनेको स्वाभाविक बुद्धियों और कामनाओंमें व्यक्त करता है। आत्माकी पाञ्चभौतिक अभिव्यञ्जनाओंको नियंत्रण करना ही नैतिक कार्य है। नव्य-कनफ्यूशस नीतिशास्त्रकी संयमी प्रवृत्तिका कारण यही मत है।

अस्ति, नास्ति, आत्मा, प्रकृति संसारके युग जिनमें बढ़ती और घटती-के क्रम बराबर चलते हैं, प्रकृतिका विविध जीवित रूपोंमें परिवर्तन और बुराईका प्रतिफल चूहसीके इन सिद्धान्तोंपर बौद्धमतकी गहरी छाप प्रकट होती है। नव्य कनफ्यूशस मतकी दो विचार-धाराएं पहलेसे ही प्रकट हुई' एक ध्यानपर, जिसका सम्बन्ध नैतिक शिक्षासे था और दूसरी वैज्ञानिक, जिसका सम्बन्ध संसारके व्यापक ज्ञानकी प्राप्ति था। पहलीपर ताओ और बौद्धमतोंका बहुत प्रभाव पड़ा। आगे चलकर दोनों रूप दो स्वतंत्र मतोंमें परिणत हो गये।

चूहसीके लिये न परमेश्वर है, न राजा और न विधि है। विश्व दो सह-शाश्वत सिद्धान्तों—ली और की क्रम और प्रकृतिपर बना है जो यद्यपि भिन्न हैं तथा एक दूसरेसे अलग नहीं किया जा सकता। क्रमके प्रेरक प्रभावसे प्रकृति विकसित होती है। क्रम स्वयं गतिशील होनेपर भी संसारमें गतियाँ उत्पन्न करता है। क्रम और प्रकृति इन्हीं दोसे मनुष्य बना है। प्रकृति दो प्रकारकी है एक 'पाइ' जो स्थूल है और दूसरा 'हन' जो वायु रूप है। प्रकृतिमें क्रम है पर उसमें मिला नहीं है। यह कहना भूल है कि मृत्युके बाद आत्मा रहता है। पुनर्जन्म नहीं होता। जब जब मनुष्य जन्म लेता है, तब तब वह क्रम और प्रकृतिसे निकले तत्त्वोंसे बनता है। पुरखे अपनी सन्ततिमें बने रहते हैं जो जीवनदान करनेके कारण उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

अपने पिछले रूपोंमें कनफ्यूशसका धर्म अपना रूप इसी कारण रख

मका कि उसके सामाजिक बलको आत्मिक विश्वासका सहारा था। मनुष्य-की आध्यात्मिक आवश्यकता और उच्चाभिलाषकी पूर्ति ताओ और बौद्ध मतोंके धार्मिक स्वयं-सिद्धोंको स्वीकार करनेसे हुई। ये कनफ्यूशसके सिद्धान्तोंके लिये विदेशी न थे, क्योंकि कनफ्यूशस एक अदृश्यशक्ति परमेश्वर और अन्य आत्माओंको मानते थे, जो मूल हैं और मनुष्यके भाग्यका नियंत्रण करते हैं। फिर भी कनफ्यूशसका ज्यादा जोर व्यावहारिक पहलूपर था, काल्पनिक पर नहीं, इसलिये धर्म रूपसे वह प्रेरक नहीं हुआ।

ताओ धर्म

ताओ त्जू कनफ्यूशससे वयोज्येष्ठ थे, क्योंकि परम्पराके अनुसार उनका जन्मकाल ई० सन् से ६०४ वर्ष पूर्व माना जाता है। वे चीनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ताओ ते चिंग' के प्रणेता समझे जाते हैं। विद्वानोंका मत है कि इसके भीतर प्रवेश करनेपर यह ई० सन्से पूर्व तीसरे शतककी रचना प्रतीत होती है। ई० तीसरेसे अठारहवें शतकतक इसपर अनेक भाष्य हुए हैं। परन्तु जैसे प्रायः सभी भाष्यकर्त्ताओंने अपने सम्प्रदायोंके दृष्टिकोणसे श्रीमद्भगवद्गीतापर विचार किया है, वैसे ही 'ताओ ते चिंग' के भाष्य भी साम्प्रदायिक दृष्टिसे हुए हैं। जिन्होंने 'ताओ' विचारोंको प्रगति दी है, उनमें ई० सन्के पूर्व चौथे शतकके लीह त्जू और ई० पूर्व चौथेसे तीसरे शतकके चुआंग त्जू हैं। चुआंग त्जू मेनसियसके समसामयिक थे और चीनके सबसे मौलिक दार्शनिकोंमें उनकी गिनती होती है। ये सांसारिक कार्य कलापसे वीतराग थे और एकान्तमें तपस्याद्वारा आत्माको बनानेपर विश्वास करते थे। यही कारण है कि उनके ग्रन्थ कल्पनाशक्ति और सचाईसे भरे पूरे रहनेपर भी संसारी लोगोंको प्रिय न हुए। इसके विपरीत सांसारिक जीवनसे उपराम लोगोंको इनसे बहुत शान्ति मिलती थी।

बौद्ध धर्म भी संसारत्यागियोंका ही धर्म है। इसलिये इसके विचार

'ताओ ते चिंग' से मिल जाते हैं। जैसे बौद्ध धर्ममें कहा गया है, 'जो दूसरेको जीतता है, वह बलवान् है; पर जो अपने आपको जीतता है, वह बलवत्तर है' वैसे ही 'ताओ ते चिंग' के भी विचार हैं। धम्मपदमें कहा गया है, 'यदि कोई सहस्र बार सहस्र मनुष्योंको युद्धमें जीत लेता है और दूसरा अपने आपको जीत लेता है, तो वही सबसे बड़ा विजेता है।' ताओ ते चिंगमें कहा है 'जिसके देखनेसे आकांक्षा उत्पन्न होती है, उसे देखते रहनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है; असन्तोषसे बढ़कर कोई बुराई नहीं है और लोभसे बढ़कर कोई विपत्ति नहीं है।' इसी प्रकार धम्मपदमें भी कहा गया है, 'कामके समान कोई अग्नि नहीं है, घृणाके समान कोई चिनगारी नहीं है, मूर्खताके समान कोई जाल और लालचके समान कोई वेग नहीं है।'

ताओ धर्म उपनिषदोंकी भाँति अध्यात्मवादी है। संसारका दैवयोग और पूर्णकी वास्तविकता दोनों में एकसी है और न्यूनाधिक एक ही ढंग-पर दोनोंकी प्रगति भी हुई है। ताओ त्जूका आधार 'परिवर्त्तनोंकी पुस्तक' है, जिसमें मान लिया गया है कि पृथिवीपर जो घटनाएँ होती हैं, वे नदीके जलकी भाँति निरन्तर चलती या घटती रहती हैं, रुकती नहीं। जब पतझड़ होता है, तब कोई पत्ता इसलिये लगा नहीं रहता कि वह बहुत सुन्दर है और कोई फूल लगा नहीं रह जाता कि वह बहुत सुगन्धित है। जो अनेक प्रकारके परिवर्तन होते हैं, उनके पीछे अन्तिम वास्तविकता है जिसका सार न नापने योग्य है और न जानने योग्य, तथापि वह प्रकृतिके नियमोंमें व्यक्त होता है। प्रकृतिके दृश्योंका जो मूलभूत सिद्धान्त इसमें निहित है, उसका नामकरण करना कठिन है, यद्यपि अस्थायी रूपसे उसे 'ताओ' कह सकते हैं। कनफ्यूशस ताओको मार्ग कहते हैं। ताओ त्जू उसे मार्गसे भी अधिक समझते हैं। सब चीजें तो पैदा होती और मरती हैं, पर उस वास्तविकताका न आदि है और न अन्त। ताओ मार्ग और उद्दिष्ट स्थान दोनों है। वही प्रकाश है जो देखता है और जिसकी लोग कामना

करते हैं। जो भाव हमें सत्यके अन्वेषणकी ओर ले जाता है, वह वही सत्य है जिसकी हम खोज करतेहैं।

ताओके विषयमें सर राबर्ट इगलजने कहा है, 'परन्तु ताओ मार्गसे भी अधिक है। वह मार्ग है और मार्गगामी भी है। वह शाश्वत मार्ग है, जिसके किनारे किनारे सब प्राणी और वस्तुएं चलती हैं, पर किसीने उसे नहीं बनाया और वह आप बना, वह सब कुछ है और कुछ नहीं है और सबका कार्यकारण है। सब वस्तुएं ताओसे उत्पन्न होती हैं, उसके अनुरूप रहती हैं और अन्तमें ताओमें ही मिल जाती हैं। ताओ ही तैत्तिरीयोपनिषद्‌का ब्रह्म है। ब्रह्म वह है जिससे ये प्राणी उत्पन्न हुए हैं, जिससे वे पालित होते हैं और जाने लगते हैं, तब जिसमें वे प्रवेश करते हैं।

हम ताओका वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि वह अनिर्वचनीय है। उसका कोई नाम नहीं है। जो जानते हैं, वे कहते नहीं और जो कहते हैं, वे जानते नहीं। जो सन्मुक्त बुद्धिमान् हैं, वे उस उपदेशके अनुसार चलते हैं जो शब्दहीन और अव्यक्त है; जो परमतत्त्व आद्यन्तरहित है, जिसकी उपलब्धि हम नहीं कर सकते; जो सबका जनक है, पर स्वयं अज है जिससे सब वस्तुओंका विकास होता है; पर जो आप विकाससे अछूता है स्वयं जात और स्वयं विकसित है। उसके अन्दर ही पदार्थ, रूप, ज्ञान, बल, विक्षेप और विरामके तत्त्व हैं। फिर भी उसे इनमें कोई नाम देना भूल है। उपनिषदोंने भी 'शान्तोऽयम् आत्मा' (यह आत्मा शान्त है) ही कहा है। तथागत बुद्धने भी परमतत्त्वका स्वभाववर्णन करना अस्वीकार किया है।

परमतत्त्वका जो वर्णन हम कर सकते हैं, वह नकारात्मक ही होगा। हम उसे कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि हम जो कुछ निरूपण कर सकते हैं, वह केवल सापेक्षगुण—परमतत्त्वका रूप ही होगा; क्योंकि परमतत्त्वसे ही सब चीजें निकलती और उसीमें लौट जाती हैं। जो चीजें हमें अलग जान पड़ती हैं, वे असली नहीं हैं। जो आधारभूत एकता सब अनेक-

ताओमें है, अपरिवर्त्तनशील सिद्धान्त जो परिवर्त्तनशील बहुत्वका सहारा है। संसार जब चलता रहता है, तब जो सत्य स्थिर रहता है, उसकी कोई सीमा नहीं है, कोई स्थिति नहीं है।

सब कल्पनीय गुणोंसे वह रहित बताया जाता है, क्योंकि निर्गुण है। वह न अच्छा है और न बुरा है, क्योंकि वही अकेला है। यह दिखानेके लिये कि वह सब गुणोंसे परे है, उसे परस्पर विरोधी 'निर्गुणो गुणी' जैसा विशेषण दिया जाता है। वह भीतर है और बाहर भी; 'पत्थरसा भारी और परसा हल्का है।' ताओ ते चिंगमें बताया गया है:—

अस्ति (भाव) और नास्ति (अभाव) एक दूसरेसे निकलता है:
कठिन और सरल एक दूसरेको पूरा करता है।
लम्बा और नाटा एक दूसरेकी जाँच करता है।
ऊँचा और नीचा एक दूसरेका निश्चय करता है।
कोई निराकार था, तथापि पूरा था,
जो द्यावापृथिवीसे पहले था
बिना ध्वनि और बिना पदार्थके
निरवलम्ब और अपरिवर्त्तनीय
सर्वव्यापक और निर्दोष था।

ताओके विषयमें चुआंग त्जूका कहना है, 'ताओमें वास्तविकता और प्रमाण है, पर क्रिया और रूप नहीं है। वह भेजा जा सकता है, पर ग्रहण नहीं किया जा सकता। वह प्राप्त किया जा सकता है, पर देखा नहीं जा सकता। वह स्वतः स्थित है। वह द्यावापृथिवीसे पहले था और वास्तवमें शाश्वत है। वह देवताओंको देवत्व देता है और संसारकी उत्पत्तिका कारण है। वह शिरोविन्दुसे भी ऊँचा है, पर ऊँचा नहीं है। वह अधोविन्दुसे भी नीचा है पर नीचा नहीं है। वह द्यावापृथिवीसे पहलेका है, पर पुराना नहीं है। वह पुरानेसे भी पुराना है, पर पुराना नहीं है।

ताओके नकारात्मक और परस्परविरोधी वर्णनसे यह नहीं सिद्ध होता कि वह केवल अभाव ही है। वह हर तरहके जीवनमें रूप और गतियाँ उत्पन्न करता है।

संसारकी सब वस्तुओंका वही जनक
बिना पेंदीका है।
ताओ कुछ करता नहीं,
फिर भी उसके द्वारा सब काम होते हैं।
क्योंकि ताओ गुप्त और अनाम है।
फिर भी ताओ सब वस्तुओंका पोषण करता और उन्हें पूर्णताको पहुँचाता है।
क्योंकि मार्ग (पथ) ऐसी वस्तु है जो अगोचर और अननुरूप है।
फिर भी उसमें सब रूप निहित हैं।

वह पृथिवीपर सब वस्तुओंका जनक है। अनामसे पृथिवी और आकाश उत्पन्न हुए हैं। सभी द्वैध प्रकाश और अन्धकार, सर्दी और गर्मी उसीसे निकलते हैं।

परमतत्त्व ताओसे इस प्रयोग-सिद्ध विश्वका ठीक ठीक सम्बन्ध किस प्रकारका है यह नहीं बताया गया। परन्तु संसार परमतत्त्वका स्खलन है इसकी ओर इन पंक्तियोंमें संकेत किया गया है:—

जब महामार्गका ह्रास हुआ,
तब मानव करुणा और नैतिकता की उत्पत्ति हुई।
जब बुद्धि और ज्ञान प्रकट हुए,
तब महाकपट आरम्भ हुआ।

ताओ धर्मावलम्बी कई सज्जन परम्परागत द्वैधको स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि विश्वकी सारी रचना 'यांग' और 'यीन' के घात प्रतिघातसे हुई है। 'यांग' प्रकाश और 'यीन' अन्धकार है। ये प्रकृति और पुरुष हैं। यांग तो आकाशका जीवनश्वास है और यीन पृथिवीका। यांग

सम्प्रसारण और यीन एकीकरणकी शक्ति है। विश्रामके एकीकरणकी अवस्था प्रलय है और व्यञ्जनकी अवस्था सृष्टि है। कनफ्यूशसके मतानुसार आकाश और पृथिवीके संयोग और कार्यसे बाह्य जगत्की सृष्टि होती है। यांग और यीन जैसी ध्रुवोंकी भाँति परस्पर विरोधी द्वैध शक्तियोंके पहले ही संसार सिद्धान्त ताओ था। ये दृश्य जगत्में ही सक्रिय प्रतीत होती हैं और इनका समान उद्गम अविभक्त एकत्वसे है। यांग सक्रिय सिद्धान्त है जो गति देता है और यीन निष्क्रिय सिद्धान्त है जिसे गति मिलती है। पर जान पड़ता है कि ताओ मतानुयायी साधारणतः इस द्वैधको स्वीकार नहीं करते। सब चीजें ताओके आश्रित हैं, पर ताओ किसीका आश्रित नहीं है।

लाखों प्राणियोंको वह उत्पन्न करता है, पर उनका प्रत्याख्यान नहीं करता।

वह उनका पालन करता है, पर उनका मालिक नहीं बनता,

उनका नियंत्रण करता है, पर उनका सहारा नहीं लेता।

भगवद्गीताके ९वें अध्यायके ५वें श्लोकमें भी इसी प्रकार 'भूतभृन्नच भूतस्थो भूतात्मा भूतभावनः (प्राणियोंका भरणपोषण करनेवाला मेरा आत्मा है पर वह भूतोंमें स्थित नहीं है।) कहा है। वह साकार वा सगुण ईश्वर नहीं है जिसमें ज्ञान, प्रेम और दयाके गुण होते हैं।

इस वर्णनसे जाना जाता है कि लाओ त्जू और चुआंग त्जूकी ताओकी कल्पना उपनिषदोंमें ब्रह्मकी कल्पनाके समान है। समयसे पूर्व, शाश्वत, सब समयके पहले स्वयम्भू आत्मा, शाश्वत, अनन्त और सर्व व्यापक था। उसे कोई नाम देना अथवा उसकी परिभाषा करना असम्भव है, क्योंकि मनुष्यकृत शब्द दृश्य पदार्थोंका ही वर्णन कर सकते हैं। हम उसके सम्बन्धमें चुप रहते हैं वा नकारात्मक वर्णन करते हैं, क्योंकि वह दृश्य पदार्थोंके अभाव गुणवाला है वा उसे गूढ़ बताते और भाषा और तर्ककी अपर्याप्तता बतानेको परस्पर विरोधी शब्दोंका प्रयोग

करते हैं। फिर भी वह सबसे पूर्ण है, क्योंकि सब विचारोंका इष्ट है और विचारोंके विषय उसीसे उत्पन्न होते हैं।

आचार नीति

अपने अन्तस्तलमें प्रत्येक आत्मा ताओ है। विश्वमें वास्तविक तत्त्वका गुप्तहृदय ताओ तो है ही, वह व्यक्तिमें व्यक्तित्वका भी गुप्त उद्गमस्थान भी है। आत्मा और परमात्मा वा ब्रह्म दोनों है। वह हमारे अन्दर बराबर बना रहता है। * उससे चाहे जितना (तत्त्व) निकालो, पर वह सूखने-वाला नहीं है। कोई ताओको नष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि न बुझने योग्य प्रकाशकी भाँति वह हम सबकी आत्मामें चमकता रहता है। जो मनुष्य ताओसे आगे चलता है, उसे फिर उसीके पास लौट जाना चाहिये। अज्ञानके कारण हम ताओको नहीं देख पाते और सुख, बल, कीर्ति और धनके पीछे दौड़ते हैं। जो कुछ अवास्तविक वा असत्य है, हम उसीकी कामना करते हैं। हम अपनेको मनोविकारों और अभिला-षाओंसे छुड़ाकर यदृच्छया जीवन यापन करनेपर ही ताओको जान सकते हैं। ताओ विश्राम है। वह कामनाका त्याग है। अकाम रहना ही हमें सच्ची शक्ति देता है। केवल वही मनुष्य गुप्त सत्य देख सकता है जो सदाके लिये अकाम रहता है। जिसने कभी कामनाका त्याग नहीं किया, वह केवल अद्भूत वस्तुएँ ही देख सकता है। ताओ मार्ग हमें सब ज्ञान और कामनाको दूर कर प्रकृतिकी ओर लौट जानेका उपदेश देता है। इन्द्रियोंकी कामनाओंपर जीवित रहनेके बदले हमें उस बड़े केन्द्रकी खोज करनी चाहिये, जो सदा बहती नदीमें स्थायी है, शाश्वत है और अपरिवर्तन-शील है।

बुद्धिको दूर करो और ज्ञानका त्याग करो,

* पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

तो मनुष्यको शतगुण लाभ होगा ।
मानुषी दयाको दूर करो और नैतिकताका त्याग करो,
* तो मनुष्य कर्तव्यपरायण और दयाशील होंगे ।
उन्हें देखनेको सरलता और पकड़नेको अनुत्कीर्ण काष्ठखंड दे दो ।
उन्हें आत्मा भाव और कामनाकी अल्पता दे दो ।

हमें अपनी नैसर्गिक स्थितिमें रहना चाहिये, जैसे समुद्र उछलता है और फूल खिलता है ।

ताओ ते चिंगमें कहा गया है कि यदि हम सब चीजें ज्योंकी त्यों रहने दें, तो मनुष्य आपसे आप सुधर जायँ । यदि हमें शम प्रिय हो, तो लोग आपसे आप धार्मिक हो जायँ । यदि हम लाभ करना छोड़ दें, तो लोग स्वतः समृद्ध हो जायँ । यदि हम अपनी कामनाओंका दमन कर दें, तो लोग आपसे आप सीधे या सादा हो जायँ ।

यों तो ताओ पदार्थनिष्ठ विश्वकी आधारभूत एकताका मूल है, पर व्यष्टिमें वह शुद्ध चेतना है । अपनेमें जो सत्यता है, उसकी उपलब्धिके लिये हमें अपने साधारण अस्तित्वकी तहोंके नीचे प्रवेश करना पड़ेगा और शुद्ध चेतना प्राप्त करनेके लिये चुआंगत्जूके अनुसार, बिना देखे देखना, बिना सुने सुनना और बिना विचारे जानना है । ताओकी प्राप्तिके लिये योगके समान प्रक्रियाका अवलम्बन बताया गया है । स्थिर सरोवरमें ताओका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । स्थिरता प्राप्त करनेको हमें अपनी इन्द्रियाँ शिथिल कर देनी चाहियें, ज्ञानेन्द्रियोंके विषयोंको बन्द कर देना चाहिये, बाहरी रूपों और विषय सम्बन्धी ज्ञानसे अलग हो जाना चाहिये और उसीमें डूब जाना चाहिये जो प्रत्येक वस्तुमें व्याप्त है । चुआंग त्जू योगपद्धतिसे काम लेते हैं, जिससे आत्मा चेतनाकी निरन्तर तहोंद्वारा बाहरी कार्यों, भूख प्यास और मनोवृत्तियोंसे

* योगी जुगत जाने नहीं, कपड़े रंगेसे क्या हुआ ?

तबतक पीछे हटता चला जाता है, जबतक वह शुद्ध चेतनातक मनके भीतर मनमें नहीं पहुँच जाता। इसके लिये योगके आसनों और प्राणायामका अवलम्बन बताया गया है। फाटक खोल दो, अहन्ताको किनारे रख दो, चुपचाप समय बिताओ, तो आत्माका प्रकाश अन्दर आवेगा और अपना घर कर लेगा। चुआंग त्जूका कहना है कि मनुष्यको नदीतीर वा एकान्तमें जाकर वैसे ही निश्चेष्ट हो जाना चाहिये, जैसे वे लोग रहते हैं जो वास्तवमें प्रकृतिसे प्रेम करते और विश्रामका सुख लूटना चाहते हैं। परिमित रूपसे सांस लेने, फेफड़ोंमें रही साँसको निकाल देने और शुद्ध वायु खींचकर उसे नया या ताजा कर लेनेसे मनुष्यका जीवन बढ़ता है। हमलोगोंको शुद्ध विषय—ज्ञाताको जाननेकी इच्छा करनी चाहिये, जो ज्ञातसे भिन्न है। सबलोग जाननेकी इच्छा तो करते हैं, पर उसका पता नहीं लगाते जिसके द्वारा मनुष्य जानता है। इसमें सन्देह नहीं कि ताओ मतावलम्बी यदि योगकी क्रियाएं नहीं करते थे, तो उनसे मिलती जुलती क्रियाएं अवश्य करते थे और बादको उनपर योगका बहुत प्रभाव पड़ा भी था। दार्शनिक ची एक चौकीपर बैठकर अपना सिर पीछे लटका देते थे और धीरे धीरे साँस छोड़ते थे। वे विचित्र ढंगसे डरे हुए तथा निश्चेष्ट दिखते थे, मानो उनके शरीरका एक ही भाग वहाँ था। उनके पास ही खड़ा उनका शिष्य येन चेंग पूछने लगा, 'आपको क्या हो रहा था? जान पड़ता है आप कुछ समयके लिये अपना शरीर लकड़ीके कुन्दे और मन राखकी तरह बना सकते हैं। इस चौकीके सहारे जिसे मैंने अभी झुकते देखा है, उस शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ा, जो वहाँ पहले बैठा था। चीने कहा, 'तुमने ठीक ही कहा है। जब तुमने अभी देखा था, तब मेरे 'मैं'ने अपनी 'ममता' छोड़ दी थी।

दूसरे स्थानपर बताया गया है कि कनफ्यूशस लाओत्जूसे मिलने गये, तो उनका शरीर ऐसा निश्चेष्ट पाया जो कठिनतासे मनुष्यके समान जान पड़ता था। थोड़ी देरतक कनफ्यूशसने प्रतीक्षा की, पर शीघ्र ही उन्हें

मालूम हुआ कि अपना आगमन जनानेका समय है, तब लाओत्जूको सम्बोधन कर उन्होंने कहा, 'मेरी आँखोंने मुझे धोखा दिया या सचमुच ही ऐसा हुआ था। अभी तुरत आप निर्जीव काष्ठभारकी तरह ऐसे जान पड़ते थे, मानो अशेष काष्ठशिला हो। ऐसा प्रतीत होता था कि आपको किसी बाहरी वस्तुका ज्ञान नहीं था और आप कहीं एकान्तमें थे। लाओ त्जूने कहा, 'सच है, मैं वस्तुओंके आदिमें घूम रहा था।'

सब विद्वान् इसे स्वीकार करते हैं कि ईस्वी सन्के पहले तीसरे शतक-का साहित्य भारतसे आये हुए भौगोलिक और पौराणिक वर्णनोंसे पूर्ण है। मि० वेले कहते हैं कि मुझे इसपर सन्देह करनेका कोई कारण ही नहीं जान पड़ता कि लीह त्जूने जिन पवित्र पर्वतीय पुरुषोंका वर्णन किया है, वे भारतीय ऋषि ही हैं और जब हम चुआंग त्जूमें कतिपय ताओ मतावलम्बियोंद्वारा हिन्दू योगके आसनोंकी भाँति क्रियाओंका करना पढ़ते हैं, तो कमसे कम इसकी सम्भावना तो हो ही जाती है कि इन ऋषियोंके योगका ज्ञान चीन पहुँच गया था। कहते हैं कि तत्त्वज्ञानसे व्यापारियोंका क्या अनुराग और ये व्यापारी ही बाहरी विषयोंके समाचार ले जानेवालों-में मुख्य थे। दोनोंमें इस असामञ्जस्यकी कल्पनाका कारण यह है कि पश्चिमी लोग अपने स्वभावसे पूर्वी लोगोंके स्वभावका निर्णय करते हैं और यही उनकी बड़ी भारी भूल है। यहाँ तो बौद्धपरम्परा ऐसे वर्णनोंसे पूर्ण है, जिनमें आध्यात्मिक विषयोंपर विचार करनेवाले प्रसिद्ध व्यापारी ही थे।

लोगोंका यह विश्वास प्रसिद्ध है कि योगसे असाधारण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। लीह त्जूमें लिखा है जिस मनुष्यमें महती शक्ति होती है, वह आगपर चल सकता है, पर जलता नहीं; सारी दुनियापर घूम सकता है, पर लड़खड़ाता नहीं। यह अभेद्य शक्ति योगसे प्राप्त होती है। घेरण्ड संहितामें तो यहाँतक लिखा है कि आग्नेयी मुद्राका अभ्यासी यदि आगमें भी फेंक दिया जाय, तो वह नहीं मरता। लीह त्जूमें ऐसे लोगोंका वर्णन

मिलता है, जो आगपर चलते हैं, पर जलते नहीं, आकाशमें चलते हैं, पर मरते नहीं। ताओ मत जादूगरीमें मिल गया और ताओ मतावलम्बी पुरोहितोंको लोग ऐन्द्रजालिक क्रियाओं और झाड़फूँकके लिये ले जाने लगे। आज भी ताओ मतावलम्बी ओझा आश्चर्यजनक कार्य करते हैं। घरोंसे भूत भगाने और गाँवोंसे बीमारियाँ दूर करानेके लिये लोग इन्हें ढूँढ़ा करते हैं।

लू येनने (जन्मकाल सन् ७५५ ई०) 'चिन तान चियो' (जीवनका स्वर्णामृत) नामकी पुस्तकमें ऐसे उपाय बताये हैं, जिनसे मनुष्य मृत्युको जीत लेता है।* कहते हैं इससे ताओ ते चिंगकी गूढ़ शिक्षाओंको प्रगति मिली है और इसपर बौद्धधर्मका गहरा प्रभाव पड़ा है। इसमें बौद्ध ग्रन्थोंके बहुतसे अवतरण दिये गये हैं। उन लोगोंके लिये इसमें अनन्त जीवनकी प्रतिज्ञाएं भी हैं जो दृश्योंके चक्करमें भी अपना ध्यान स्थिर वास्तविकतासे नहीं हटाते।

कहते हैं कि योगके द्वारा आत्मा ज्ञान, प्रेम और बल सहित भाव स्थितिको प्राप्त करता है। उस समय हम उस भक्षक अहंकारसे छूट जाते हैं जो हमपर प्रबल रहनेमें ही प्रसन्न रहता है। जो अनुभव होता है उसमें उस सुनिश्चितता और आनन्दका भाव रहता है, जो सुख दुःखसे परे रहता है। यह अनुभव शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ताओका गम्भीरतर अनुभव तार्किक वर्णनोंसे पूरा नहीं होता। गुरुका उपदेश सिद्धान्तसे अनुराग उत्पन्न करनेके लिये ही होता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य अपना वैयक्तिक उद्योग न करे। प्रत्येक मनुष्यको स्वतः सत्यकी खोज करनी चाहिये। जब वह उसे प्राप्त कर लेता है, तो शाश्वत जीवनवाला हो जाता है।

ताओ सदाके लिये रहता है और जो उसे प्राप्त करता है,
वह शरीरान्त होनेपर भी नष्ट नहीं होता।

* ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

शाश्वत ताओकी उपलब्धि वा अनुभूति नकारात्मक रूपसे उस वस्तुसे जुड़े बन्धनको काट देती है। यद्यपि हम उस समय शाश्वत जीवन पाते हैं तथापि हमारा व्यक्तित्व परिवर्त्तित रूपमें रहता है। यदि हम अपने अन्दरके ताओकी प्राप्ति कर लें, तो जीवन और मरणसे वस्तुओंमें जो परिवर्त्तन होता है, उसके प्रभावसे रहित हो जायँ। जो ताओ प्राप्त कर लेता है, वह अपने अहङ्कारसे सीमित नहीं रहता। वह सृष्टि मात्रसे तादात्म्यका अनुभव करने लगता है। सब वस्तुओंसे समुद्र और पर्वत, वायु और प्रकाशसे अपने सम्बन्धका हम अनुभव करने लगते हैं।

जिसने ताओका अनुभव किया है, इच्छा रहित और सर्वस्वार्थशून्य उसका कर्म भी अकर्म ही है, जिसका आधार वह नहीं, पर उसकी कृत कृत्यतामें है। वह काम करता और चलता है, पर उसे थकावट नहीं जान पड़ती।

वह लौकिक अर्थमें ही अकर्म है पर वास्तवमें वह सर्वोच्च क्रिया है। हम यत्न नहीं करते, पर काम आपसे आप होता है। जब हमारी सब कामनाएं छूट जाती हैं, जब सब बाहरी विषयोंसे हमारा नाता टूट जाता है, तब हम ऐसी अवस्थामें पहुँच जाते हैं, जिसमें हममें और हमारे चारो ओरकी वस्तुओंमें मेल हो जाता है और हम ऐसा जीवन अतिवाहित करने लगते हैं, जो स्वतः और निश्चेष्ट रहता है जैसे ऋतुएं आती जाती हैं। व्यक्ति केवल साक्षी मात्र रहता है। वह वस्तुओंको उनकी स्वाभाविक गतिपर छोड़ देता है और जीवनमें कैसे कैसे अवसर आते हैं, उनकी चिन्ता नहीं करता।

वैराग्यका उपदेश दिया गया है। ताओके साथ मेल होना पुण्यात्मा होना है। पुण्य 'ते' है, जो मनुष्यमें ताओका फल है। वह अच्छा और बुरा दोनो हो सकता है। वह कर्मके समान पुण्य नहीं है। हमारे कर्म ही यहाँ और वर्तमान जीवनमें व्यक्त होते हैं, भावी जीवनमें नहीं। अच्छाई या बुराईकी जो शक्ति किसी वस्तुमें अन्तर्हित होती है, वह 'ते' कहाती है।

धीरे धीरे वही धर्म कार्य वा सदाचार कहाने लगी। संसारमें प्रत्येक जीवका-मनुष्य वा पशुके व्यवहारका एक ढंग होता है, जो स्वभावसिद्ध होता है और जबतक हम स्वाभाविक व्यवहार करते हैं, तबतक ताओके मार्गपर चलते हैं। स्त्रीपुरुष राजारङ्क सबका एक एक मार्ग होता है। प्रत्येकको अपने स्वभाव-स्वधर्मको विकसित करना चाहिये, जैसा भगवद्गीतामें कहा गया है। यदि हम सबपर एक प्रकारका आचरण लाद दें, तो सब उलट पुलट हो जाय। प्राचीन कालमें एक समुद्री पक्षी लूकी राजधानीमें पहुँचा तो लूका राजा उसके स्वागतके लिये बाहर गया, उसके सामने मन्दिरमें पीनेको मदिरा रखी, उसे प्रसन्न करनेको संगीत सुनाया और उसके खानेके लिये एक बैल मरवाया। परन्तु पक्षी चकरा गया और इतना अधिक थका था कि कुछ खा पी न सका और तीन दिन बाद मर गया। यह मानुषी व्यवहार पक्षीके योग्य न था, वरंच ऐसा था जैसा उसे अपने लिये करना चाहिये। यदि पक्षीके अनुकूल व्यवहार उसने किया होता, तो उसे घने जंगलमें बसेरा लेने देता, मैदानमें घूमने देता, नदी या झीलमें तैरने, मछलियाँ खाने, दूसरी चिड़ियोंके साथ उड़ने और इच्छानुसार कहीं ठहरने देता।... जो जल मछलीके लिये जीवन है, वही मनुष्यके लिये मृत्यु है। चुआंग त्ज़ू तो सब सरकारोंको बुरा बताते हैं और स्वभावमें हस्तक्षेप करना भी बुरा कहते हैं। हमें विविध प्रकारके जीवन बनाये रखने चाहिये। यदि सबलोग ताओके अनुसार बर्तें तो संसारमें लड़ाई न हो। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो अच्छी न हो और ऐसा कोई दृष्टिकोण नहीं है जो ठीक न हो। हमें प्रकृतिके नियमका पालन करना चाहिये। भलमनसी और अप्रतिकार बुद्धिमानी और सुखका मार्ग हैं। ये सिद्धान्त बुद्धके इन उपदेशोंसे भिन्न नहीं हैं, 'बुराईसे दूर रहो, भलाई करो और हृदयके अन्तस्तलको शुद्ध करो। अपना पक्ष छोड़कर सहिष्णु होना ही धर्म है। दबना ही जीतना है।' चुआंग त्ज़ू कहते है—

जो सब चीजोंमें सबसे अधिक दबती है,

वह उसे दबा सकती है जो सबसे कड़ी है ।
वह सार-रहित है इससे वहाँ भी प्रवेश कर सकती है जहाँ स्थान नहीं है ।
इसी प्रकार मैं उस कर्मका मूल्य समझता हूँ जो कर्म रहित है ।
पर शब्दोंके बिना भी (जैसे) शिक्षा हो सकती है
(वैसे ही) क्रियारहित कर्मका भी मूल्य होता है
यह बिरला ही समझ सकता है…
ताओ ते चिंगमें लिखा है—
ऋषि कुछ नहीं करता, पर सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।

मनुष्य जीवनमें ताओकी क्रिया, लाओत्ज़ूके मतानुसार, बिना अधिकारके उत्पादन है, बिना आत्मप्रतिपादनके कर्म है और बिना प्राधान्यके विकास है । उनका यह उपदेश बताता है, 'किसी बड़े देशका शासन वैसे ही करो, जैसे तुम छोटी मछली पकाते हो ।' बहुत कोलाहल न मचाओ । बात बहुत न बढ़ाओ । 'अपने सम्बन्धमें किसी प्रकारकी स्थापना न करो। जैसा कुछ चलता है चलने दो, पानीकी तरह बहो, दर्पणकी भाँति स्थिर रहो, प्रतिध्वनिकी नाईं गूँजो, शीघ्रतासे नास्तिकी भाँति चले जाओ और पवित्रताकी नाईं शान्त रहो ।' इसी प्रकार जीवनमुक्तोंका आचरण होता है । ताओ ते चिंगमें लिखा है—

इसलिये ऋषि
पूर्णतम उपायसे सदा मनुष्योंकी सहायता करते हैं ।

चुआंगत्ज़ू लाओ त्ज़ूके इस आशयके वचन उद्धृत करते हैं—'जो जानता है कि मैं सबल हूँ, पर निर्बल रहनेमें ही सन्तोष मानता है, वह मानवजातिका ध्रुव है । जो जानता है कि मैं निर्दोष हूँ, फिर भी अपमान सहता है, वह मनुष्योंका अगुआ होगा । जो पिछली जगह बैठनेमें ही सन्तुष्ट रहता है, जब सब अगली जगहके लिये दौड़ते हैं, तो वह संसारकृत अवज्ञाको स्वीकार करता है ।

ताओ ते चिंगमें युद्धोंकी निन्दा की गयी है । लाओ त्ज़ू कहते हैं,

'युद्ध सब कर्मोंसे अहितकर और निन्दनीय है। जो लोग राजमन्त्री हैं, उन्हें शस्त्रपाणि होनेसे सावधान रहना चाहिये, क्योंकि सब युद्धोंमें बदलेकी भावना रहती है। जहाँसे कोई सेना निकलती है, वहाँ वर्षों दुःख दुर्भिक्ष और लूटखसोट चलती है। जो विजयसे प्रसन्न होता है, जान पड़ता है उसका हृदय हत्यारेका है।

ताओ मतने चीनको अत्युत्तम रहस्यवाद दिया और इस प्रकार चीनियोंके मनकी वह गम्भीर उत्सुकता पूरी करनेका यत्न किया, जिससे बाहरी जगत्के बन्धनोंसे वह मुक्त हो जाय। परन्तु उसने अध्यात्मविद्याका विकास नहीं किया, जो मनुष्यकी तर्कबुद्धिको तृप्त करती। ब्रह्म और जगत्के सम्बन्धका यथार्थ स्वरूप और दोनोंके मध्यस्थ किसी क्रमिक विकासका विचार नहीं किया है। धर्मकी दृष्टिसे वह सन्तोष नहीं दे सका। बौद्ध धर्मके बहुतसे सिद्धान्त और आचार अपनाकर और लाओत्सूको बुद्धके आसनपर बैठाकर उसने लोगोंकी धार्मिक कामनाएं पूरी करनेका प्रयत्न किया है। ताओ मतके भिक्षुसम्प्रदाय और उसके अनुशासनके नियम बौद्ध ढंगपर बनाये गये हैं। बौद्धोंसे ताओ मतावलम्बियोंने मन्दिर, पुरोहित, भिक्षुणी और आचार लिये हैं। बौद्ध सूत्रोंके ढंगपर और उनसे मिलता जुलता भक्ति मार्ग खड़ा किया और मृतकोंके लिये प्रार्थनाएं तैयार कीं। उन्होंने त्रिमूर्तिकी कल्पना अपनायी, जिसमें लाओत्सू, पिआनकू और विश्वके शासकको रखा और बौद्धोंके अघमर्षण या पापनाशनकी बातें भी मरणोपरान्त भयंकर त्रास और दंड समेत ले लीं। बौद्ध धर्मसे ही स्वर्ग और नरककी कल्पनाएँ ली गयीं और चीनी नाम देकर उन चीनी देवताओंके अधिकारमें दे दी गयीं, जो चीनी जातिके ऐतिहासिक वीर थे और जिन्हें देवत्व दिया गया था। बौद्धोंके अनुकरणपर भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके सम्प्रदाय खड़े किये गये। तांग युगमें अर्थात् ६१८ से ९०७ ईस्वीतक ३०० वर्षोंमें लाओत्सू बहुत श्रद्धास्पद हो गये और धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते वे बुद्धके समान देवता माने जाने लगे।

जब तन्त्रयान बौद्ध धर्मने रहस्यमय विधिक्रियाका प्रवर्तन किया, तब उसी ढंगपर ताओ मतका विकास हुआ। इन्द्रजालके विषयमें लाओत्जू और चुआंगत्जूके ग्रन्थ ऐन्द्रजालिक स्कूलोंमें पाठ्यशास्त्रका काम करने लगे। इन्द्रजालके कारण ही ताओ मत लोकप्रिय हुआ। कहते हैं कि इसमें अमरता देनेवाले स्पर्शमणिका रहस्य है। इसमें सब प्रकारके मन्त्र, तन्त्र और अभिचार और भूतपिशाच भगानेके उपाय बताये गये हैं। बुद्धिदायी चीनके लिये ऐसे सम्प्रदायको धर्मरूपसे स्वीकार करना कठिन हो गया, जो अन्धविश्वाससे पूर्ण है।

परन्तु इसकी मुख्य दुर्बलता संसार पक्षमें थी। इसका अर्थ सांसारिक कार्योंसे आलस्यपूर्ण उदासीनता था। इसने मनुष्योंको शिक्षा देनेका कोई यत्न नहीं किया। मेनसियस कहते हैं कि सामाजिक विषयोंमें ताओ मत अराजकताकी ओर ले जाता है, क्योंकि स्वभावमें सब प्रकारके हस्तक्षेपोंको वह नापसन्द करता है और शासनयन्त्रको अनावश्यक बताकर इसका तिरस्कार करता है। ताओ मतकी प्रवृत्ति यह सिद्ध करनेमें है कि मनुष्य अपनी नैसर्गिक अवस्थामें स्वार्थपरतासे रहित है और बुद्धि तथा इच्छा उसके स्वभावके विपरीत हैं। यदि कोई स्वार्थी अथवा किसी वस्तुकी प्राप्तिका अभिलाषी है, तो अन्य कारणोंसे। रंगकी अधिकता आँखें अन्धी कर देती है, शब्दकी अधिकता कान बहरे कर देती है और चटनी अचारकी अधिकतासे स्वाद बिगड़ जाता है। अपनी मानसिक शान्ति रखनेका एक मात्र उपाय यही है कि लुभावनी वस्तुओंको देखकर उत्तेजित न हो। सामाजिक और राजनीतिक हस्तक्षेप अव्यवस्थाका दूसरा मार्ग है। जितनी ही अधिक रुकावटें और निषेधाज्ञाएँ होंगी, उतने ही लोग अधिक दरिद्र होंगे। जितने ही अधिक शस्त्रास्त्र होंगे, राज्यमें उतनी ही अधिक गड़बड़ी होगी। जितने ही ज्यादा कानून और हुक्म होंगे, उतने ही चोर और डाकू बढ़ेंगे। चुआंग त्जू हमें प्रकृतिकी ओर लौट जानेका उपदेश देते हैं। 'जब संन्तपन छोड़ दिया जायगा और विद्वान् जात बाहर कर दिये जायँगे,

तब डकैती बन्द हो जायगी । जब जेड (गहनेकी धातु) फेंक दी जायगी और रत्न नष्ट कर दिये जायँगे, तब चोरी न होगी । (लियांग ची चाओकृत 'चीनके राजनीतिक विचार') कनफ्यूशस तो मनुष्यको बुद्धिवादी होनेका उपदेश देते हैं, पर ताओ मतालम्बी बुद्धिवादका तिरस्कार करते हैं। ताओ मतवादी कहते हैं कि प्रकृतिके जादूका गुण ग्रहण करते हुए हमें पृथिवीसे निकटतर रहना चाहिये और वर्तमान पीढ़ीके बहुतसे 'सभ्य' लोग जो सेल्यूलायड और कंकरीटकी दुनियामें रहते हैं, ताओ धर्मके आदि युगवादकी ओर आकर्षित होते हैं । कनफ्यूशसकी भूतानुकम्पा, साधुवृत्ति, मर्यादा, ज्ञान और भक्तिके सिद्धान्तोंके सामने ताओ मतावलम्बी हृदय, प्रकृति, सहज बुद्धि, अकर्म और अचेतना रखते हैं, जो ध्यान और उद्यमके बौद्ध आदर्शोंसे सर्वथा भिन्न है । अशोकने चट्टानों और खम्भोंपर खुद-वाया है, 'उद्यममें प्रसन्नता हो । छोटे बड़े सब उद्यम करें ।' बौद्ध आदर्श है शक्तिपूर्ण उद्यमका । एक अवसरपर जब बुद्ध एक धनी ब्राह्मणके यहाँ भिक्षार्थ गये, तो उसने कहा 'मैंने जोता और बोया, इससे खाता हूँ । इसके विपरीत तुम बिना जोते बोये खाना चाहते हो ।' इस भर्त्सनाके उत्तरमें बुद्धने कहा, 'मैं अधिकतर महत्त्वपूर्ण आत्माकी किसानी करता हूँ । इसमें विश्वास ही बीज है, तप वर्षा है, समझ जोत और हल तथा नम्रता हलका डंडा है, मन ही बन्धनी और विचार ही मेरा फाल और औंगी है । उद्यम मेरा बैल है, जो मुझे बिना मुड़े उस जगह ले जाता है, जहाँ एक बार पहुँचकर कोई दुखी नहीं होता, सो इस प्रकार यह जोतना जोता जाता है; इसमें अमरताका फल लगता है ।'

ताओ मतने परम्पराकी दुहाई देना अस्वीकार किया । लाओ त्जू पितृभक्तिसे उदासीन थे, क्योंकि ताओमें सब पुरखे समान हैं । ताओ मतकी बड़ी भारी भूल यह है कि उसने मनुष्यके लिये स्वाभाविक सामा-जिक पहलूका विचार नहीं किया । इसके सिवा उससे एक प्रकारके भाग्य-वादको उत्तेजन मिलता है । सांसारिक विषयमें ताओवादी प्रकृतिके सार्व-

त्रिक नियमोंको मानते हैं। संसारको बनाने या बिगाड़नेके प्रकृतिके अधिकारपर कोई प्रश्न नहीं हो सकता। यदि हम प्रकृतिका मार्ग बदलनेका यत्न करेंगे, तो अपनेको असमर्थ पावेंगे। आत्मशान्तिके लिये आवश्यक है कि हम प्रसन्नतापूर्वक प्रकृतिके नियमोंका पालन करें, यह नहीं कि अनिच्छापूर्वक चुपचाप उन्हें मानते रहें। जब चुआंग त्जूकी पत्नीकी मृत्यु हुई तब शोक मनानेको तार्किक हुई त्जू उनके घर गये। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चुआंग त्जू एक उलटे पात्रको जानुपर रखकर बजाते और गीत गाते हैं। हुई त्जूने कहा, 'आखिरकार वे आपके साथ रहीं, आपके लड़कोंको उन्होंने पाला पोसा और आपके साथ बूढ़ी हुईं। आप उनके लिये शोक न करते यही क्या कम था, पर यह तो बहुत अधिक है कि आपके मित्र आपको गाते बजाते देखते हैं।' चुआंग त्जूने कहा कि 'मेरे विषयमें आपके मिथ्या विचार हैं। जब वह मरी, तब मैं निराश हुआ, जैसा हर कोई होता है। पर शीघ्र ही जब मैंने उसपर विचार किया कि मृत्युसे हमारे ऊपर कोई नया विचित्र संकट नहीं आ पड़ता।......यदि कोई थककर लेटने चला जाता है, तो हम चिल्लाते और हल्ला मचाते उसके पीछे नहीं दौड़ते। मेरी स्त्री सोनेके भीतरी कमरेमें जाकर लेटी है। रो पीटकर मैं यदि उसके आराममें बाधा डालूं, तो इसका यही अर्थ होगा कि प्रकृतिके राजनियमोंके विषयमें कुछ नहीं जानता।'

समाजकी बुराइयोंको लाओ त्जू सामाजिक बुराइयां ही नहीं मानते थे, आत्माके पाप भी समझते थे। उनसे छुटकारा पानेका उपाय यही है कि मनुष्य युक्तिसिद्धसे परमार्थमें चला जाय। परन्तु दुर्भाग्यवश ताओमत मानुषी नियमोंको शरीरशास्त्र और प्राणिशास्त्रके अनुकूल बनानेका यत्न करता है।

ताओमत विविध प्रकारसे विकसित हुआ। मेनसियसने इन कई विकासोंका वर्णन किया है। यांग च्यू और मो चाइ निपट व्यक्तिवादी हो गये और इस सिद्धान्तके माननेवाले बने कि अपने अपनेको देखना चाहिये।

एक बाल उखाड़ लेनेसे चाहे संसारभरका उपकार ही क्यों न हो जाय, पर वे उसे न उखाड़ेंगे। किसीने भिक्षुधर्मका अवलम्बन किया नहीं कि गृहस्थ और नागरिकके कर्त्तव्य छोड़ दिये। हस् इसिंगने अराजकवादकी उद्‌भावना की और सरकारकी आवश्यकता नहीं मानी। जो जीवनके कार्योंपर धर्मशास्त्रके हस्तक्षेपको मानते हैं, वे इसके लिये ताओ मतकी शरण लेते हैं कि विश्व स्थिर है। लाओ त्जू सामाजिक और राजनीतिक जीवनको भूलभरा विकास समझते हैं और मनुष्यको परिवर्त्तनशील जगत्‌से आध्यात्मिक जगत्‌में ले जानेकी चेष्टा करते हैं। लाओ त्जूका दूसरी दुनियापर जोर देना कनफ्यूशसकी उस परम्पराके विरुद्ध है जो मनुष्यके सामाजिक जीवनको संवारती और युगकी बदलती हुई माँगके लिये अपना लेती है। निर्जीविता सन्तकी पवित्रता नहीं है। यदि हम मानसिक अवस्थाओं और भौतिक समाजोंकी ओर ध्यान न दें, जिनमें आत्मिक उद्देश्य व्यक्त होते हैं, तो हमारी असमर्थता और भी गहरी होती जायगी और हम संसारमें यह घोषणा करेंगे कि जीवनकी घटनाओं और शीघ्रतासे बदलते हुए परिवेष्टनोंके धक्कोंके विषयमें निश्चय करनेमें हम अयोग्य हैं। औपनिषद विचारोंसे ताओमतकी आध्यात्मिकताकी बड़ी निकटता है और उसका शासन योगक्रियामें है। यदि कनफ्यूशसका नीतिशास्त्र हमें सिखाता है कि कैसे मेल और सुव्यवस्थासे रहना चाहिये तो ताओमतका अत्युत्तम रहस्य हमें समाजसे निकल जाने और ताओको प्राप्त करनेमें सहायता देता है। हमें ऐसे विश्वास और विचारकी पद्धतिका प्रयोजन है जिसमें दोनोंकी अच्छी बातें हों।'

बौद्ध धर्म

संक्षिप्त बुद्ध चरित

बौद्ध धर्मके प्रवर्त्तकका नाम सिद्धार्थ था। उत्तरखण्डमें शाक्यजातिका एक गणतन्त्र राज्य था इसके राजा वा गणपतिका नाम शुद्धोदन था।

सिद्धार्थके पिता ये ही शुद्धोदन थे। गौतम वंशमें जन्म लेनेके कारण आगे चलकर बुद्धत्व प्राप्त करनेपर सिद्धार्थ गौतम बुद्ध कहाये। कहते हैं कि स्वप्नमें सिद्धार्थने रानी महामायाके गर्भमें प्रवेश किया था और जब रानीने राजाको अपना स्वप्न बताया, तब इसके विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे स्वप्नफल पूछा। इन्होंने कहा, 'महाराज, चिन्ता न कीजिये। आपके पुत्र होगा, जो यदि गृहस्थ रहेगा, तो सार्वभौम सम्राट् होगा और जो संसारत्यागी होगा, तो बुद्ध होगा और संसारके पाप और जड़ता दूर करेगा।'

शाक्योंकी राजधानी कपिलवस्तु थी। यहीं सिद्धार्थका लालनपालन और शिक्षण हुआ था। यहीं विवाह भी हो गया था। यथासमय इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया, क्योंकि यह राहुकी भाँति कार्यमें बाधा डालनेवाला अथवा संसारमें फँसा रखनेवाला समझा गया। परन्तु वास्तवमें यह बाधक नहीं हुआ, वरञ्च आगे चलकर बुद्धप्रवर्त्तित संघमें रहकर उनके कार्यमें इसने सहायता ही पहुँचायी। सिद्धार्थ सत्यकी खोजमें घरसे निकल पड़े और वर्षों विविध प्रकारकी उन्होंने तपस्या की। जब इष्ट सिद्धि न हुई, तब बोधि द्रुमके नीचे यह प्रतिज्ञा करके बैठ गये :—

इहासने शुष्यतु मे शरीरम् त्वगस्थि मांसं प्रलयञ्च यातु।
अप्राप्य बोधीं बहुकल्प दुर्लभाम् नैवासनात् काममेतत् चलिष्यति॥

अर्थात् इसी आसनपर चाहे, मेरा शरीर सूख जाय, खाल, हड्डियाँ और मांस नष्ट हो जायँ, पर जबतक मैं बहुकल्पों दुर्लभ बोधिको प्राप्त न कर लूँगा, तबतक इस आसनसे यह शरीर न हटेगा। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और इसके बाद सिद्धार्थके बदले गौतम बुद्ध हो गये। इस तपस्याके फलस्वरूप जो ज्ञान सिद्धार्थको प्राप्त हुआ, उसके प्रचारार्थ उन्होंने एक भिक्षु सम्प्रदाय वा संघ बनाया, जो बौद्ध संघके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जिसके सिद्धान्तोंको बौद्धधर्म नाम दिया गया। बुद्धने अपने

अनुयायियोंको आदेश दिया कि बहुजनकी भलाई, लाभ और सुख तथा संसारपर करुणा करने और मनुष्यों तथा देवताओंकी भलाई और सुखके लिये निकल पड़ो। एक अकेला न जाय। दो-दो मिलकर जाओ। तुम सत्यकी शिक्षा दो, जिसमें आदि, मध्य और अन्तमें प्रेम है। ऐसे लोग हैं जिनकी दृष्टि धूलसे धुँधली हो गयी है और नष्ट हो रही है, क्योंकि वे सत्य नहीं सुनते।

गौतम बुद्धका जन्म ईस्वी सन्से ५६३ वर्ष पूर्व और परिनिर्वाण ४८३ वर्ष पूर्व माना जाता है अर्थात् ८० वर्षकी परमायुमें उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। तपस्यामें उन्होंने मध्यम मार्गका अवलम्बन किया था। उनका मत था कि शरीरको न तो अत्यन्त सुख ही देना चाहिये और न उसे सुखाही डालना चाहिये। इसीलिये लोग उनके मतकी ओर आकर्षित हुए थे। बुद्धने अपनेको धर्मोपदेशक मानकर ही अपने अनुभूत सिद्धान्तोंका प्रचार किया था। उनका कथन था कि जीवन-की पवित्रतासे अन्तर्दृष्टि होती है। नैतिक शासन वा संयम आत्मिक मुक्तिका मार्ग है। सयुत्त निकायमें लिखा है, कि बुद्धके विषयमें लोग कहने लगे, जानना कैसे होता है यह वे जानते हैं; देखना कैसे होता है यह वे देखते हैं। वे संसारके नेत्र हैं, वे ज्ञानमूर्त्ति हैं, सत्यमूर्त्ति हैं। वे ही हमें शिक्षा देते हैं और गुप्त सत्य प्रकट करते हैं। वे ही हमें कल्याण और अमृतत्त्व देते हैं। वे धर्मके ईश्वर हैं।' परिनिब्बाणके बाद उनके उपदेश पालि त्रिपिटकमें संगृहीत किये गये। उन्होंने स्वयं कहा है 'मैं केवल एक ही बात सिखाता हूँ दुःख और दुःखसे छुटकारा, बुराईसे भागना, कल्याणको गाँठ बाँधना और अन्तर्हृदयको स्वच्छ करना।

बुद्धका उपदेश

उपनिषदोंमें अनिर्वचनीय और शुद्ध ब्रह्मकी चर्चा है, 'जहाँसे वाणी लौट आती है—यत्र वाचो निवर्तन्ते। उस ब्रह्मके साथ जीवका सम्बन्ध

भी यहाँतक बताया गया है कि जीवात्मा उसका व्यक्त रूप है। कर्म और संसारकी गूढ़अनुभूतिके लिये नैतिक अनुशासनका प्रयोजन भी बताया गया है। इसी शिक्षाका उपयोग बुद्धने अपने ढंगपर किया। उनकी वृत्ति असन्दिग्ध हेतुवादकी थी। उनका मत था कि घटनाओंको देखकर हमको अपने सिद्धान्त स्थिर करने चाहिये। आत्मिक उन्नतिके लिये हमें बुद्धिको अस्वीकार न करना चाहिये। बुद्ध अपने शिष्योंसे कुछ छिपाते न थे। उनका विचार था कि बुद्धि वा ज्ञान इस समझसे बढ़ता है कि समाज-के नियामक कौन कारण हैं; और उनके फल क्या हैं। बुद्धका ढंग व्याव-हारिक वा तर्कमूलक होनेकी अपेक्षा वैज्ञानिक अधिक है। उनके आत्मिक निश्चय केवल आध्यात्मिक तर्क-वितर्क नहीं हैं; पर अति सूक्ष्म मानसिक विचारणाके आधारपर हैं। उनके चार सत्य विवेकस्वीकृत तत्त्वोंके मूलमें हैं।

यह अनुभवका स्वीकृत तत्त्व है कि अन्तवन्त वस्तुएं अस्थायी हैं; जो भी कुछ अस्थायी होता है, उसमें वास्तविकता वा आत्मा नहीं होती। इस निरन्तर परिवर्त्तनशील संसारमें कुछ भी स्थायी या स्थिर नहीं है यद्यपि न इसका आदि है और न अन्त है तथापि मनुष्य इससे बाहर निकल सकता है। यह अस्थिरता धार्मिक आकाङ्क्षाको उत्तेजन देनेवाली है। यदि हमें जीवनमें कोई कष्ट न होता तो धर्मका विचार करनेका कोई प्रयोजन न होता। 'यदि संसारमें तीन बातें न होतीं तो बुद्धका आविर्भाव न होता और उनके धर्म और सिद्धान्त न चमकते। ये तीन क्या हैं? जन्म, जरा और मृत्यु।' त्वरित अनुभवसे आगे बढ़े बिना; और कोई ईश्वर है या नहीं इस तत्त्वका प्रतिपादन किये बिना हम कह सकते हैं कि एक शाश्वत सत्य है, जो धर्मको चलाता है और यही धर्म उपनिषदोंके परमब्रह्मका बोधक है। बुद्ध ऊपरी जीवनकी तुलना भीतरी जीवनसे करते हैं, जब हम ऊपरसे चलकर गहराईमें पहुँच जाते हैं, तो हम उस महासत्यसे अपना तादात्म्य कर लेते हैं। सार्वत्रिक सत्यका यह ज्ञान हमारी प्रकृतिमें

परिवर्त्तन ला देता है; वह नवजीवन है—नये मनुष्यका पैदा होना। धर्म-की वास्तविकता धर्मशास्त्रीय तत्व वा रहस्यमयी धारणा नहीं है। वह ज्ञानका त्वरित तत्त्व समझी जाती है। जो शाश्वत नहीं है, वह सन्तोषपूर्वक देखनेकी वस्तु नहीं है। हमारा लक्ष्य स्थिर वा शाश्वत होना चाहिये, जिसके आत्मा है, जो अतुलनीय निर्वाण है, जो दौरात्म्यसे परे है। यदि बुद्ध आत्माकी वास्तविकता या सत्यता नहीं स्वीकार करते तो इसका कारण उनका यह भय है कि कहीं हम यह समझकर निश्चिन्त न हो बैठें कि हम इसी रूपमें सचमुच वही हैं। हमारे सब विचार, इच्छाएँ, कार्य, इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके कार्य सब नाशवान हैं। हमें उनसे बचना चाहिये। सत्य स्थिर है और सब अस्थिर। उनमें आत्माका अभाव है, इसलिये वे असत्य हैं। बुद्धका मत है कि व्यक्तियोंकी पूर्ण स्वनिश्चित स्थिति नहीं है। यदि उसमें वास्तविकता होती, तो व्यक्तिमें कोई परिवर्तन न होता। यदि नैतिक उपदेश फलप्रद हो, तो व्यक्ति परिवर्तन योग्य होना ही चाहिये। शाश्वत सच्चे आत्माको प्राप्त करनेके लिये हमें अपनी इच्छाका प्रयोग करना चाहिये। हमारी बुद्धि सदसद्विवेचनी और इच्छा सोद्यम होनी चाहिये। यदि संसार असन्तोषजनक है, तो इसका कारण यही है कि वह असार और अज्ञ है। संसारके दुःखोंका नाश हो सकता है। हम अप्रसन्न हैं क्योंकि हमारी इच्छाएं मूर्खतापूर्ण हैं। यदि हम सुखमय जीवन चाहते हैं, तो वह अनायास आ जानेवाला नहीं है, वरञ्च सुविचारों, सुशब्दों और सुकर्मोंसे वह बनाया जा सकता है। शिक्षा और साधनासे हम अपने हृदयको पवित्र कर और नैतिक नियमोंका पालनकर अपने स्वभाव बदल सकते हैं। यदि हम संसारके दुःखोंसे छूटना चाहते हैं, तो हमें अपनी इच्छाशक्ति प्रबल करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्यके स्वभावमें विचार वा अनुभूतिकी अपेक्षा इच्छाका स्थान बड़ा है। बुद्ध अपने अनुयायियोंको उपदेश देते हैं कि अपनेमें पुरुषका बल, पुरुषका ओज और पुरुषका उद्यम उत्पन्न करो। इच्छाके प्रयोगका अर्थ है—ध्यान और धारणाका कार्य करना;

धार्मिक आकांक्षाएं और मनुष्यता—सम्बन्धी आशाएं यथेष्ट नहीं हैं। मानुषी रागोंकी वास्तविकता और शुद्ध भावोंमें जो अन्तर है, वह मन और हृदयको शुद्ध करनेसे ही दूर हो सकता है। बुद्ध स्वावलम्बनको उत्साहित करते हैं और आत्मसंयमका उपदेश देते हैं। ईश्वरेच्छाके सामने सिर झुकानेकी जो नम्रता है, वह पीछे आती है; ऐतिहासिक बुद्धके उपदेशमें नहीं, क्योंकि वे तो मानते थे कि आत्मा ही आत्माका ईश्वर है, दूसरा ईश्वर कौन हो सकता है? अपने जीवनके अन्तमें बुद्धने अपने शिष्योंसे कहा था कि तुम आप अपनी शरण बनो।

यद्यपि बुद्ध कहते हैं कि अज्ञान ही संसारकी शृंखलाकी आवश्यक लड़ी या कड़ी है, तथापि वह चार सत्योंके काल्पनिक ज्ञानसे नहीं, उनपर चलनेसे टूटती है। इच्छा शक्तिका अत्यन्त अभ्यास करनेपर ही अज्ञान जीता जाता है। बुद्धका सिद्धान्त जीवनका एक पन्थ है। जो इस मार्ग-पर चलता है और उद्दिष्ट स्थानपर पहुँच जाता है, वही बुद्ध है; वही तथागत है। हमसे यही कहा जाता है कि तुम निर्वाणप्राप्तिपर ध्यान लगाओ, जबतक हम पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लेंगे, तबतक अव्यवहार्य कठिनाइयाँ दूर न होंगी। जो बीचमें ही उन्हें हल कर लेना चाहता है, उसका ध्यान उस आवश्यक मार्गसे हट जायगा, जिसपर उसे डटे रहना चाहिये। बुद्धके बहुतसे शिष्योंकी शिकायत थी कि हमारे इन प्रश्नोंके उत्तर नहीं मिले कि संसार सान्त है या अनन्त। शाश्वत है या अशाश्वत और मृत्युके बाद सन्तका अस्तित्व रहता है अथवा नहीं? बुद्धने इनके उत्तर नहीं दिये; क्योंकि उनके मतानुसार ये उपदेशप्रद नहीं थे; न कर्मके तत्त्वसे ही इनका सम्बन्ध है; न चक्रके घूमनेके लिये इनकी प्रवृत्ति है; न इनमें रागाभाव, न विराम; न निश्चल भाव है और न ये उच्चतर सामर्थ्य, पूर्णज्ञान अथवा निर्वाणकी ओर ले ही जाते हैं। बुद्ध अपनेको उस रोगका वैद्य समझते थे, जिससे मनुष्य स्वभावपीड़ित है। जो कोई उनके उपदेशपर चलना तबतक अस्वीकार करता है, जबतक

उसको आध्यात्मिक पहेलियोंके उत्तर नहीं मिल जाते, उसकी तुलना उस मनुष्यसे हो सकती है, जो विषैले बाणसे घायल तो हुआ हो, पर तब-तक चिकित्सा कराना अस्वीकार करता हो, जबतक इसका निश्चय न हो जाय कि उसको घायल करनेवाला काला है या गोरा, ब्राह्मण है या क्षत्रिय। इन प्रश्नोंके जो उत्तर बुद्ध दे सकते हैं, वे उनके विचार ही हो सकते हैं, ठीक उत्तर नहीं। और विचार उपदेशप्रद नहीं होते। बुद्ध अपने शिष्योंसे कहते थे कि जनश्रुति, परम्परा, या मेरे वचनके प्रमाणपर आत्मिक सत्य मत मानो। वे भविष्यके विषयमें तर्क-वितर्क नहीं करते थे। बुद्धका आग्रह है कि मनुष्य अपना चरित्र अच्छा बनावे जिसका फल सुकर्म होगा। वे मध्यम मार्गके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं। वे चाहते थे कि हम न तो आत्मासक्तिकी अति करें और न आत्मदमनकी। इसलिये वे मध्यममार्गका अवलम्बन करनेको कहते थे। वे साधु, शास्त्र वा अस्वाभाविक आचारका उपदेश नहीं देते। उरूवेलमें रहकर उन्होंने कठिन तपश्चर्या की थी, पर उससे उनका सन्तोष न हुआ। आत्मदमनसे ज्ञान नहीं हो जाता। उन्होंने ध्यानका अधिकतर स्वाभाविक मार्ग पकड़ा। अपने शिष्योंको अन्तिम उपदेश देते समय उन्होंने इसके गुणका वर्णन इस प्रकार किया—'शुद्ध आचारके साथ ध्यान करनेका बड़ा लाभ और बड़ा फल होता है; और ध्यानके साथ बुद्धिका संयोग होनेसे बड़ा लाभ होता है। जिस मनमें ऐसी बुद्धि होती है, वह नशोंसे-इन्द्रियोंकी वासनाओंसे, जीवनके भ्रमसे, मोह और अज्ञानसे छूट जाता है।' उनके समयके सभी विचारवानोंने यह मान लिया था कि जो आत्म-जीवन बितानेको कृतसंकल्प हो गये हों, उन्हें सांसारिक बन्धनसे मुक्त होना चाहिये; परन्तु मुनियोंको अपना जीवन, बौद्धिक कार्य और सामाजिक सेवाके लिए उत्सर्ग करना पड़ता था।

बुद्धने ब्रह्मविद्या और यज्ञोंकी चर्चा नहीं की, पर बताया कि नीतिके अष्टाङ्ग मार्गका पालन करना ही धार्मिक जीवनका अर्थ है। उनके

अनुयायियोंको अपनेको नैतिक नियमोंके साँचेमें ढालना चाहिये। वे देव पूजनके विषयमें उदासीन हैं, यद्यपि उसका निषेध नहीं करते। बुद्धने आचारशास्त्र और पौरोहित्य शास्त्रकी उपेक्षा की है। कहा है, जहाँतक इनका सम्बन्ध मनका अच्छा स्वभाव बनानेसे है, वहाँतक तो ये कामके हैं। उनका उपदेश तत्त्वतः व्यावहारिक है—'यथा महासमुद्रका एक ही स्वादु लवण-स्वादु है—तथा सिद्धान्त और अनुशासनका भी एक ही स्वादु है। कष्टोंसे बचनेके लिये हमें साधु जीवन बिताना चाहिये। अष्टाङ्ग मार्ग सुखका मार्ग है। मैत्रीका पालन करनेका आदेश दिया गया है। जो प्रेम हृदयको मुक्त करता है, सुकर्म करनेके सब अवसर उसकी १६ वीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते। जो प्रेम हृदयको मुक्त करता है, उसमें उन सब सुकर्मोंका समावेश हो जाता है। वह चमकता है, प्रकाश और दीप्ति देता है।' जैसे माता अपनी जान जोखोंमें डालकर भी अपने एक मात्र बच्चेपर ध्यान लगाये रहती है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्यको सब प्राणियोंके प्रति असीम प्रेम उत्पन्न करना चाहिये।

पितृ-मातृभक्तिपर बुद्धिका भी बड़ा आग्रह है। वे कहते हैं कि संसारमें दो ऐसे प्राणी हैं जिनका ऋण ठीक ठीक नहीं चुकाया जा सकता। यदि कोई मनुष्य अपने माता पिताको १०० वर्षोंतक कन्धेपर बैठाकर घूमा करे अथवा संसारका सब राज्य और सब सम्पत्ति उन्हें दे डाले तो भी वह उनसे उरिन नहीं हो सकता। महावग्गमें लिखा है कि एक मुनिने संघकी सम्पत्ति अपने माता-पिताको दे दी, तथापि वह दोषी नहीं ठहराया गया। सिगलोवाद सुत्तमें बताया गया है कि एक दिन जब बुद्ध भिक्षाके लिये भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि सिगल नामक गृहस्थ दोनो हाथ जोड़े चारो दिशाओं तथा ऊर्ध्व और अधःको प्रणाम कर रहा है। उसका अभिप्राय था कि इन छ दिशाओंसे जो विपत्ति आनेवाली हो, उससे उसकी रक्षा हो जाय। बुद्धने कहा कि अपनी रक्षा करनेका सच्चा उपाय यह है कि अपने माता-पिताको पूर्व, अपने गुरुओंको दक्षिण, अपने स्त्री-

बच्चोंको पश्चिम, अपने मित्रोंको उत्तर अपने सेवकोंको अधः और श्रमणों तथा ब्राह्मणोंको ऊर्ध्व समझें। इसके बाद उन्होंने माता-पिता और बच्चोंके शिष्यों और शिक्षकोंके, पति और पत्नीके, स्वामी और सेवकोंके तथा गृहस्थों और श्रमणोंके प्रति कर्त्तव्योंका व्याख्यान किया। उसी प्रकारके ५ कर्त्तव्योंका वर्णन कनफ्यूशसने भी किया है। माता-पिता और बच्चे, पति और पत्नी तथा मित्र ये तीनों तो बुद्ध और कनफ्यूशस दोनोंके लिये समान ही हैं। बुद्धने राजा और प्रजाके कर्त्तव्योंकी चर्चा नहीं की। बुद्ध नियमोंके पीछे पागल न थे। वे मनुष्यकी नैतिक स्वतन्त्रताको बाहरी-क्षुद्र नियमोंसे जकड़नेके पक्षपाती न थे। उन्होंने कहा भी है कि बाहरी प्रमाणसे मनुष्यका विवेक न दबाया जाय। कर्मवादके अनुसार मनुष्य अपने ही कियेका फल पाता है। जैसा वह बोता है, वैसा ही काटता है। ईश्वर कोई मनमाना नहीं है, जो नियमोंमें हस्तक्षेप कर सकता हो। जो हम थे, वही हम हैं। बुद्ध यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्यके लिये आध्यात्मिक योग्यताओंद्वारा कुछ असाधारण शक्ति प्राप्त कर लेना सम्भव है; परन्तु उन्होंने धर्ममें उन्हें महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया और समाधिको असन्तोषजनक बताया। बुद्धने लोकप्रिय देवताओंका अस्तित्व न तो अस्वीकार किया है और न उनके पूजनका ही निषेध किया है। ये देवता संसारके जनक अथवा शासक नहीं हैं, पर आत्मिकजीव है, जिनकी शक्ति और क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं। परमतत्त्वसे इनकी तुलना नहीं हो सकती।

जब हम ठिकानेपर पहुँच जाते हैं, तब बोधि—अन्तर्दृष्टि, दृष्टिकी पूर्णता और पवित्रता प्राप्त करते हैं। हम संसाररूपी स्वप्नसे जागते हैं। शुद्ध ज्ञान बौद्धमार्गकी सातवीं भूमिका है जो आनन्दातिरेक—अन्तिम सिरेके ठीक पहले आती है। निर्वाणका शाब्दिक अर्थ है इच्छाओं—लोभ, मोह और मत्सरका नाश। वह कोरी शून्यता नहीं है, क्योंकि नाश या नास्तित्वके अर्थमें निर्वाणको बुद्धने अस्वीकार किया है। सनिषेध रूपसे निर्वाण-परिवर्तनशीलसे बचना है और स्पष्ट रूपसे वह शाश्वत जीवन है।

हम उस अवस्थाका ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि वह साधारण ज्ञानकी कोटियोंसे परे चली जाती है। कहते हैं कि वह अजात, अभूत और अमृत है—इसपर भी वह 'परमं सुखम्' है। जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसकी न माप हो सकती है, न थाह लगायी जा सकती है। निर्वाणका आनन्द इसी जीवनमें प्राप्त किया जा सकता है। वह ऐसा आनन्द नहीं है, जो दूसरी दुनियामें मिलनेवाला होगा। वह विश्रामकी अचेतन अवस्था नहीं, पर कार्यकरी और उच्च शान्ति है। जब हमें ज्ञान हो जाता है और जब हम जीवनका सच्चा अर्थ और अभिप्राय समझ लेते हैं, तब हमारी इच्छा मनुष्य जातिसे अन्याय दूर कराने, अनीतिको दबाके दुखको दूर करने और आत्मिक भलाईके लिये सहयोग करनेकी होती है। बुद्धका अपना ही जीवन शान्तिकी नापी न जाने योग्य गहराई और सार्वत्रिक करुणाका दृष्टान्त है। गम्भीर बुद्धि और असीम प्रेम निर्वाणके चिह्न हैं। हीनयानका अर्हत् ध्यानका प्रभु समझा जाता है; पर महायानका बोधिसत्त्व करुणाका पति है, जो सबको बुद्धि प्राप्त करने देनेके लिये अन्तिम निर्वाणकी प्राप्ति टाल देता है। 'क्योंकि जब यहाँ इच्छा है कि सब प्राणी पूर्ण स्वतंत्र हो जायँ, वहाँ मैं अपने साथियोंका साथ कैसे छोड़ूँ ?" ऐतिहासिक बुद्धमें एक ओर अर्हतकी शान्ति और असंग और दूसरी ओर बोधिसत्त्वका प्रेम और करुणा थी। मैत्रीपूर्ण और निष्कपट दीर्घ जीवनमें उन्होंने-धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, साधु और असाधुको प्रेम और पवित्रताकी शक्ति दिखा दी है। पिटकोंमें बुद्धकी सर्वदर्शिता और पवित्रताका वर्णन आता है। जहाँ बार बार बताया गया है कि वे देवताओं-को उपदेश देते और उनकी सेवाञ्जलि प्राप्त करते थे।

महायान और हीनयान सम्प्रदाय

बौद्धोंके दो सम्प्रदाय महायान और हीनयान प्रसिद्ध हैं। बुद्धके निर्वाणके उपरान्त, नास्तिकता आरम्भ हुई जिसका वर्णन ईस्वी पूर्व तीसरे

शतकमें अशोकके शिलालेखोंमें भी पाया जाता है। इन साम्प्रदायिक विवादोंको मिटानेके लिये अशोकने ई० पूर्व २४० के लगभग संघका आयोजन किया। कालान्तरमें और सम्प्रदाय बढ़े, जिनके दो रूप हीनयान और महायान हुए। महायान इसका नाम इसलिये पड़ा कि यह प्रेम, श्रद्धा और ज्ञानसे सबको मुक्तिकी आशा दिलाता है। कनिष्कका शासन-काल ई० पहले शतकके उत्तरार्धमें था। इसने कश्मीरमें संघ निमंत्रित किया, जिसमें महायान सम्प्रदाय स्वीकार किया गया। हीनयानके धर्म ग्रन्थ पालीमें हैं और इनका दावा है कि गौतमकी मूल शिक्षा जो विहार-वादी और हेतुवादी है, हमारे ही पास है। महायानके ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। बुद्धका सच्चा स्वभाव है अन्तर्दृष्टि या बोधि और उनका धर्म। धर्मको जानना बुद्धको ही जानना है; वही बुद्धका शरीर है। धर्मकाया आधारभूत सत्य है, जो अकलुषित, अपरिवर्त्तनीय, अपूर्व और अत्युत्तम है।

अध्यात्मके आदर्शवाद और भक्तिवादपर विश्वासके विषयमें महायान-की विचारधारा भगवद्गीतासे मिलती जुलती है। दोनोंका कहना है कि अकर्मसे कर्म उत्तम है, केवल वह निःस्वार्थ होना चाहिये। दोनों विश्वास-पर जोर देते हैं। दोनोंकी घोषणा है कि मृत्युके समय हम कृष्ण वा अमिताभका ध्यान करें तो उनके लोकको चले जायँ। ज्यों ज्यों भक्ति प्रबल होती जाती है, त्यों-त्यों ध्यानकी जगह पूजा होने लगती है और उपदेशक बुद्ध—ईश्वर बन जाता है। सद्धर्मपुण्डरीकमें कहा गया है—'मैं संसारका जनक हूँ। सब मनुष्य मेरे बच्चे हैं और सब निश्चय ही बुद्धत्व प्राप्त कर सकते हैं।'

महायान बौद्ध सम्प्रदायका धर्म रहस्यमयी भक्ति और नैतिक उद्यम है। बुद्धने कहा है कि, 'जो श्रमण अपने रोगी साथीकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह मेरी ही सेवा करता है।' बुद्ध सेवा और त्याग करनेका आग्रह करते हैं। यदि हम बुद्धकी शरणमें जाते हैं, तो इसका अर्थ है कि हममें और बुद्धमें कोई सम्बन्ध है। निर्वाण प्राप्त करनेके पहले बुद्ध बोधि-

सत्व ही थे। उनका बोधिसत्त्वत्व २४ बुद्धोंमें सबसे पहले बुद्ध दीपंकरके समयमें आरम्भ हुआ था। असंख्य जीवनोंके कष्टों और त्यागको पार करते हुए, गौतम उस निर्दिष्ट स्थानकी ओर बढ़ते थे। बोधिसत्त्व वह है, जो इस जीवन या अगले जीवनमें अवश्य ही बुद्ध होगा। जातक कथाओंमें बहुतसे बोधिसत्त्वोंका वर्णन है। मिलिन्द पह्लोंमें बोधिसत्व मैत्रेयका उल्लेख है। महापदान सुत्तमें २४ बुद्धोंका वर्णन है। एक हिसाबसे हम सभी बोधि-सत्त्व हैं, यद्यपि हममें जो बोधि है, वह व्यक्त नहीं हुई। जिनमें वह व्यक्त हो गयी है, वे अपने सब क्रियाकलाप संसारका उद्धार करनेमें लगा देते हैं। गौतमके विषयमें कहा जाता है कि पृथिवीपर ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ उन्होंने दूसरोंके लिये अपना जीवन उत्सर्ग न कर दिया हो। सद्धर्मपुण्डरीकमें लिखा है कि 'वे इसीलिये महासत्त्व कहलाते हैं कि संसारपर करुणाके कारण संसार—देवताओं और मनुष्योंके लाभ भलाई और सुखके लिये वे कार्य करते हैं।' चन्द्रकीर्ति का कहना है कि जैसे नवचन्द्रकी महत्ता होती है, पूर्ण चन्द्रकी नहीं, वैसे ही बुद्धोंकी अपेक्षा बोधिसत्त्वोंकी पूजा अधिक होती है। 'जब मैं पास खड़ा ही हूँ, तब क्या कोई दूसरा यह नम्र कार्य करे ? यदि मैं अपने अभिमानके कारण यह काम न करूँ तो मेरे अभिमानका नष्ट हो जाना ही अच्छा है।......उस समय मैं अपने दृढ़ आत्मासे न करनेके अवसरोंका अन्त ही कर दूँगा। यदि वे मुझे जीत लें, तो मेरी त्रैलोक्य जीतनेकी आकाँक्षा परिहासोक्ति ही ठहरेगी। मैं सबको विजय करूँगा, कोई मुझे विजय न कर सकेगा।' बुद्धका अपना जीवन ही इस बातका उदाहरण है कि सोत्साह उद्यमसे हम यहीं और अभी पूर्ण शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। और साथ ही संसारकी भलाईका काम भी कर सकेंगे। बोधिसत्त्व तो दया और ज्ञानके दूत हैं, जिन्होंने दुःखी मानव-समाजके सहायतार्थ अनिश्चित कालके लिये अपनी निर्वाणप्राप्ति-को टाल दिया है। अवलोकितेश्वर और मञ्जुश्रीकी भाँति महान् बोधि सत्त्वोंने निर्वाण प्राप्त करना इसलिये अस्वीकार किया कि जिसमें वे संसारी

के कष्ट दूर कर सकें। बोधिसत्त्व बुद्धके प्रवर्त्तक हैं और उनके आदि हैं। वे संसारके उत्पादक नहीं हैं, पर मानव जातिके सहायक हैं। बुद्ध स्वयं जनक न थे, पर चिकित्सक और उद्धारक थे, जिन्होंने मोक्ष-का मार्ग बताया। बोधिसत्त्वोंका आदर हिन्दू अवतारकी कल्पनाके समान है। बोधिसत्त्वों या पारमिताओंके गुण हैं—उदारता, नैतिकता, सहिष्णुता, अत्यानन्दित ध्यान और सर्वातिरिक्त बुद्धि। इनके बाद ये ५ गुण और चढ़ाये गये—सहजलब्ध ज्ञान, शक्ति, निश्चय, शिक्षा देनेमें चतुरता और करुणा। यहाँ सहिष्णुता और शक्तिकी अपेक्षा उदारता और करुणापर ज़ोर ज्यादा है।

इस सिद्धान्तपर महायानवालोंका विश्वास है कि अपना पुण्य दूसरोंको दिया जा सकता है। उसका ज़ोर सब चीजोंके पारस्परिक आधारपर है। इसलिये कोई पुण्य अर्जन करता है, तो दूसरोंकी भलाईके लिये उसका उपयोग भी कर सकता है। कोई मनुष्य अपने ही लिये नहीं जीता।

७वें ई० शतकमें शान्तिदेवने बोधिचर्य्या नामका एक ग्रंथ लिखा था। उसमें यह बताया था कि बोधिसत्त्व बननेकी इच्छा रखनेवालोंको क्या करना चाहिये। उन्हें अपनेमें आत्यन्तिक नैतिकता, धैर्य, शक्ति, ध्यान और ज्ञान उत्पन्न करना चाहिये। उन्होंने जो पुण्य अर्जन किया हो अथवा उनमें जो पुण्य हो, उसे दूसरोंको देना चाहिये और अपनेको प्राणियोंकी मुक्तिके लिये बलिदान कर देना चाहिये।

महायानका अध्यात्मवाद

अद्वैत वेदान्तकी भाँति महायानके आचार्योंका भी विश्वास है कि ब्रह्मका निरूपण नहीं हो सकता और शुद्धात्मा एतादृशता, भूततथता या शून्य-द्वारा ही उसका वर्णन हो सकता है; क्योंकि यह प्रयोगसिद्ध निर्णयसे रहित है। तथागत जो सत्यतक पहुँच गये हैं, वे ही तथता या सत्यताके

स्थानमें हैं। नागार्जुनने कहा है कि, "उत्पाद, उच्छेद, निरोध, अशाश्वत, एकार्थ, नानार्थ, आगमन और निर्गम कुछ भी नहीं है।' इस दृष्टिसे अस्ति या नास्तिके विषयमें कोई विधान नहीं हो सकता, क्योंकि यह दृष्ट जगतके परे है। यह भी बताया है कि अशास्त्रसिद्ध वा प्रयोगसिद्ध जगत्‌की वस्तुएं स्वविपरीत हैं और इसलिये अन्तमें वास्तविक नहीं हैं। उनकी स्थिति सापेक्ष्य है। यदि सभी कुछ अवास्तविक है, तो बुद्ध और उनके उपदेशकी सिद्धि ही क्या है? नागार्जुन कहते हैं कि बुद्ध दो प्रकारके सत्यकी चर्चा करते हैं एक पूर्ण वा परमार्थ और दूसरा सापेक्ष अथवा संवृति। असंग और वसु-बन्धुका योगाचार सम्प्रदाय तीन प्रकारका ज्ञान मानता है। एक परिकल्पित सत्य वा भ्रमपूर्ण ज्ञान, जब हम रस्सीको साँप समझ लेते हैं। दूसरा परतंत्र सत्य वा सापेक्ष ज्ञान, जब हम रस्सीको रस्सी ही समझते हैं और तीसरा परिनिष्पन्न सत्य, जब हम समझते हैं कि रस्सी मनकी कल्पना है और वास्तवमें नहीं है। पहले दोनोका तो सापेक्ष ज्ञान वा संवृतिमें समावेश हो जाता है, परन्तु तीसरा परमार्थ वा अन्तिम सत्य है। योगाचार सम्प्रदायका मत है कि सब वस्तुएं आलय विज्ञानमें विश्राम करती हैं। आलय विज्ञान सदा स्थायी और सर्वधारक मनको कहते हैं यह भी तथता वा एतादृशताका एक उदाहरण है, एता-दृशता नहीं है। योगाचार सम्प्रदायके लिये दृश्य जगत् विचारोंका बाह्य-करण है, पर सत्यताका वर्णन उस आत्माके रूपमें किया गया है, जिसका निकटतम साम्य आलय विज्ञान है और जो सब विचारोंका आधार है।

जैसे अद्वैत वेदान्तमें कहा गया है कि अनुभवका संसार न तो वास्तविक संसारसे भिन्न है और न वास्तविक संसार ही है। यह समझना भूल है कि माध्यमिक सम्प्रदाय संसारको सर्वथा असत्य—अस्तित्वरहित समझता है। इसके नामसे स्पष्ट होता है कि यह मध्यम मार्गियोंका सम्प्रदाय है। संसारका न तो आधारभूत अस्तित्व है और न सर्वथा नास्तित्व। वस्तुओंकी कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं होती। केवल ब्रह्ममें ही उस प्रकारकी सत्यता होती है

और वस्तुएँ सर्वथा स्थितिहीन है। उनका अस्तित्व उनके सम्बन्धोंके कारण है। अनुभवकी कोटियोंकी अति सूक्ष्म और भाषा-सम्बन्धी साहस-पूर्ण आलोचनाके द्वारा नागार्जुन यह सिद्ध करना चाहते हैं कि ज्ञानमें हम किसी निश्चयपर नहीं पहुँचते। तिसपर भी हममें सत्य वा वास्तविकताकी भीतरी दृष्टि है, जो प्रकाशमान् है जिसकी थाह नहीं है, जो अकथनीय गम्भीर तथा अनन्त स्वच्छ है। आवश्यक प्रकृतिकी अन्तर्दृष्टि, प्रज्ञापार-मिता—बुद्धिकी पूर्णता प्राप्त हो सकती है। एक अर्थमें संसारके दृश्य उससे भिन्न हैं और एक अर्थमें वही हैं। श्रीशंकराचार्यका मत है कि संसार सदसद् विलक्षण है। माध्यमिक सम्प्रदाय इस विषयमें उनके उपदेशसे सहमत है, क्योंकि वही बुद्धका मत है। एक परमावधिमें तो वस्तुओंका अस्तित्व नहीं है, पर दूसरीमें है। तथागतने इन दोनोंका त्याग किया है और मध्यम सिद्धान्तका ही उन्होंने उपदेश दिया है।

पराविद्याकी दृष्टिसे ब्रह्म ही सत्य है, इसलिये साधारण अनुभव वा सापेक्ष सत्यके संसारमें ईश्वरवाद और अवतारोंकी सिद्धि होती है।

महायानका विश्वास है कि ३ शरीर होते हैं—एक धर्मकाया वा सत्य शरीर जो उपनिषदोंका शुद्धब्रह्म है, दूसरा सम्भोगकाया वा स्वर्गीय अभिव्यञ्जन, जो ईश्वर—सगुण ब्रह्मकी कल्पनाके समान है और तीसरा निर्माणकाया, जो पृथिवीपर व्यक्त अवतारोंके समान होते हैं प्रत्येक बुद्ध।

धर्मकाया वह सर्वव्यापक क्षेत्र है जिसमें कोई परिवर्तन वा संशोधन नहीं होता, पर जो हमें विभिन्न रूपोंमें दिखता है। वह उन सब वस्तुओंका अकर्तृक क्षेत्र है, जिनके भिन्न भिन्न नाम हैं, जैसे, तत्त्व (वास्तविकता) शून्य, निर्वाण (शाश्वत मुक्ति); समाधिकाया (आनन्दातिरेक शरीर) बोधि, प्रज्ञा (ईश्वरीय ज्ञान, जो कर्त्ता और कर्मके भेदका अतिक्रम कर जाता है), तथागतगर्भ उनका गर्भ जो सबलोग धर्मधातु (अनुध्यानकी अर्हत्पदके अनुसार भूततथता प्राप्त करते हैं)। भूततथता सब दृश्योंका साँचा है।

कहा जाता है कि न तो वह है और न वह नहीं है। न दोनों है और न कोई नहीं है। उपनिषदोंमें ब्रह्मका जो वर्णन है और लाओत्जुने ताओका जो वर्णन किया है, उसमें धर्मकाया इतनी बड़ी बतायी जाती है कि विश्व उसमें समा जाता है और इतनी सूक्ष्म है कि सुईकी नोक उसे नहीं उठा सकती। वह शुद्ध आत्मा है। नानात्वका लेशरहित ज्ञान है। वही तत्त्व है। धर्मकाया उसी अर्थमें शून्य है जिसमें ब्रह्म निर्गुण है। बोधि रूपमें वह सबमें रहती है और हमें बुद्ध बननेको प्रेरित करती है। वह प्रज्ञापारमिता कहाती है। जो परमात्माकी शक्ति है, वही अभिव्यञ्जन की शक्ति है जो उससे अभिन्न है, जिसे वह व्यक्त करती है। धर्मकाया सब वस्तुओंकी समष्टि है। हमारे अज्ञानके कारण सब चीजें अलग अलग दिखती हैं। योगाचार सम्प्रदायके अनुसार जो संसार हम देखते हैं, वह विज्ञान अर्थात् मानसिक अवस्थाओंकी एक मालिका है और माध्यमिक सिद्धान्तके अनुसार वह मिथ्या है। परमतत्त्व, धर्मकाया स्वर्गके निवासियोंके लिये सम्भोगकायाके नाम और रूपसे व्यक्त होती है। यह सम्भोगकाया आनन्दका शरीर है, जिस रूपमें अपने स्वर्गीय घरोंमें बुद्ध प्रकट होते हैं; और पृथिवीपर रहनेवालोंके लिये वह निर्माण काया है। एक या अनेक बुद्ध सगुण ईश्वर माने जाते हैं, जो पुराण, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् हैं। जैसे ईश्वरको भी विश्व या शिव मानते हैं, उसी प्रकार सम्भोगकायाके बहुतसे रूप हो सकते हैं। सत्यके विवेचक और शिक्षक बुद्धका मानुषी जीवन उस विश्व सम्बन्धी सत्यताका अभिव्यञ्जन है, जो अनन्त अन्य बुद्धों उनके पूर्वजों और उत्तराधिकारियोंमें अपनेको व्यक्त करता है; उनके पूर्व पुरुषों और उनके उत्तराधिकारियोंमें जो दूसरे संसारोंमें स्वर्गोंके शासक हैं। यहाँ विचित्र बुद्ध या आद्य बुद्धका प्रश्न नहीं है। असङ्ग, का कहना है—'यह असम्भव है कि एक ही बुद्ध होता, क्योंकि तब बोधिसत्त्वोंमें सबको छोड़कर एक ही अकेला उस प्रकाशतक पहुँचता।' फिर भी सब बुद्ध एक ही

बुद्ध अवस्था धर्मकायामें भाग लेते हैं, जो प्रज्ञापारमिता है और जिसमें ज्ञाता और ज्ञातमें कोई भेद नहीं। उपनिषद्के एक प्रसिद्ध वचन के दृष्टान्तपर असङ्ग कहते हैं, 'नदियोंके जल अपने किनारोंके स्तरोंकी भिन्नताके कारण अलग अलग जान पड़ते हैं। पर जहाँ वे एक बार समुद्रमें पुनः प्रविष्ट हुए नहीं कि उनका एक ही स्तर हो गया और उसका एक ही ढेर हो गया।' इसी प्रकार मुनियोंकी भी बात है। ज्योंही उन्होंने साधारण बुद्धावस्थामें प्रवेश किया कि सब एक हो गये। जब हम बुद्धावस्था प्राप्त कर लेते हैं, तो नवीन सृष्टि बन जाते हैं। ऐतिहासिक बुद्धके स्थानमें महायान शाश्वत बुद्धको रखता है। पार्थिव रूपमें उसका अस्तित्व सच्चे और उचित प्रकारका नहीं है। सद्धर्म पुण्डरीक बताता है कि कैसे बुद्धने पार्थिव रूप लिया और बुद्धका उत्तर हमको भगवद्गीतामें कही हुई कृष्णकी उक्ति*अथवा यहुन्नाई ईसाकी बातकी याद दिलाती है—'इब्राहीमके पहले मैं था। तथागत त्रैलोक्यको देखते हैं। पर ऐसा नहीं जैसे अज्ञ साधारण लोग देखते हैं। वे देखते हैं कि वस्तुएं शाश्वत रूपसे सामने हैं। जो तथागत बहुत समय पहले पूर्ण रूपसे बुद्ध हो गये थे, वे अपने जीवनकी अवधिमें असीम हैं, वे अमरसे हैं।' जिन्हें शिक्षा-ज्ञानका प्रयोजन है, उनके हितार्थ वे अवतार लेते हैं। 'जब मनुष्य अविश्वासी, अज्ञ और इन्द्रिय-सुखोंके प्रेमी हो जाते हैं, तब जो संसारकी गति जानता है, वह मैं कहता हूँ कि मैं तथागत हूँ और मैं इसका

श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थ अध्यायके इन श्लोकोंके भावसे तुलना कीजिये:—

* अजोऽपि सन्नव्यय[illegible] सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय [illegible] ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे ॥ ८ ॥

विचार करता हूँ कि मैं उन्हें कैसे बोधिकी ओर प्रवृत्त करूँ और कैसे मैं उन्हें बुद्धशासनका भागी बनाऊं। विश्वासियोंके शिक्षार्थ बुद्ध किसी समय फिर कट हो सकते हैं। यह स्पष्ट है कि महायान सम्प्रदायके सत्यका हृदय भाषाका सारांश नहीं, पर उमड़ता हुआ प्रेम और करुणा है।

बुद्ध बहुत हैं, क्योंकि महायान सम्प्रदायके अनुसार प्रत्येक मनुष्यका उद्देश बुद्ध बनना है। इन बुद्धोंमें सबसे अधिक लोकप्रिय अमिताभ या अमिद हैं। वे सुखावतीके स्वर्गमें शासन करते हैं। अनेक युग बीत गये जब अमिताभ बड़ा राजा था। उसने अपना सिंहासन छोड़ दिया और सत्यकी खोजमें घूमने लगा। उस समयके बुद्धके निर्देशसे उसने बोधि सत्त्वत्व प्राप्त किया और बुद्ध बनने, सब प्राणियोंका उद्धार करने और ऐसे स्वर्गकी सृष्टि करनेके बड़े व्रत लिये जिस स्वर्गमें धन्य लोगोंके आत्मा, सुख, बुद्धि और पवित्रताकी निरन्तर अवस्थाका भोग करते रहें। उनका व्रत इस प्रकार था—'जब मैं बुद्ध होऊं, तब विश्वकी दशों दिशाओंके प्राणी मेरे ऊपर प्रसन्नतापूर्ण विश्वास रखें। वे मेरे स्वर्गमें पुनर्जन्म लेनेकी अपनी अभिलाषाओंपर ध्यान लगाये रहें और मेरे नामका जप करें चाहे वह दस बार हो या कम ही हो। यदि वे पञ्च-महापातकोंके दोषी नहीं हैं और उन्होंने सद्धर्मकी निन्दा नहीं की है, तो ऐसे प्राणियोंकी मेरे स्वर्गमें जन्म लेनेकी इच्छा अवश्य ही सफल होगी। यदि ऐसा न हो तो मैं बुद्धत्वकी पूर्ण बोधि कभी न प्राप्त करूँ।'

महायानका भक्ति-साहित्य पूजा, कामना और शरणागतिके भजनों और प्रार्थनाओंसे भरा पड़ा है। बोधिचर्यावतार कहता है—'मैं स्वस्थ नहीं हूँ। मैं दीन हूँ। संसारमें ऐसा कुछ नहीं है जिससे मैं पूजा करूं। परन्तु अपनी उदारतासे रक्षक स्वयं मेरी भेंट स्वीकार करें। मैं हृदयसे अपनेको और जो कुछ मेरा है, उसे बुद्धों और उनके पुत्रों—बोधि-सत्त्वोंको भी अर्पण करता हूँ। हे गुरुजनो, मुझे अपनाइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ और आपका सेवक बने रहनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।'

छोटा सुखावती व्यूह अमिताभके स्वर्गके विषयमें कहता है—'वर्तमान जीवनमें किये हुए सुकर्मोंके फल और पुरस्कार स्वरूप प्राणी उस बुद्ध देश-में नहीं पैदा होते। नहीं, जो सब स्त्री-पुरुष अपनी मृत्युके पहले एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः और सात रातोंको अमिताभके नाम सुनते या जपते हैं, अमिताभ मृत्युके समयमें उनके सामने खड़े होंगे। वे प्राणी शान्त चित्तसे इस जीवनसे विदा होंगे और मृत्युके उपरान्त स्वर्गमें जन्म लेंगे।'* जो अमिताभके स्वर्गमें जन्म लेते हैं, वे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करते हैं। अमिताभका स्वर्ग निर्वाण नहीं है, वह बुद्धक्षेत्र है। महायान सम्प्रदायमें निर्वाणकी आकांक्षाके बदले पुनर्जन्म लेनेकी आशाकी बात कही गयी है।

यहाँ भक्तिमार्गके सभी उपकरण विद्यमान हैं, अमिताभ लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उन्होंने अपने पुत्र गौतमको अपनी ओरका मार्ग दिखानेके लिये भेज दिया है। अवलोकितेश्वरकी पवित्र आत्माद्वारा लोगोंकी सदा उनतक पहुँच रहती है, यहाँ भक्तिद्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि अन्तिम समयमें अमिताभका ध्यान करते हैं, तो उनके स्वर्ग पहुँच जाते हैं।

निर्माणकाया प्रादुर्भावोंका वह धरातल है, जो प्राणियोंकी आध्यात्मिक आवश्यकता पूरी करनेके लिये, पहलेकी भूमिकासे निकल पड़ता है। ये मानुषी रूप, जो बुद्ध धारण करते हैं, उनके वास्तविक स्वभावका आंशिक और अपूर्ण रूप हैं। जैसा हिन्दू देवतावादमें कहा गया है, यह रूप ईश्वर अपने भक्तोंके हितके लिये साधकानां हितार्थाय—लिया करता है। असङ्ग-का कहना है कि, 'बोधिसत्वकी सबसे भीतरी अँतड़ियोंमें प्राणियोंके लिये वैसा ही प्रेम रहता है, जैसा कोई अपने एकलौते बेटेका करता है—जैसे कबूतरी अपने छोटे बच्चेका प्यार करती है और उसे अपने पंखोंके नीचे रखनेके लिये ठहर जाती है, वैसा ही व्यवहार करुणामयका प्राणियोंके साथ है, जो उसके बच्चे हैं।' बुद्धावस्था और संसारके बीचमें बोधिसत्व मध्यस्थका काम करते हैं।

* सगुण उपासक मोच्छ न लेहीं; तिनकहँ राम भगति वर देहीं।

बोधिसत्व अवलोकितेश्वर और मञ्जुश्री कृपा और ज्ञानके मूर्त्त रूप हैं। अवलोकितेश्वर प्रायः एक स्त्री रूप ताराके साथ रहते हैं, जिसकी वन्दना स्त्री-बोधि-सत्वके समान होती है। दयासागर रूपसे अवलोकितेश्वर बहुत-से रूप धारण करते हैं। मञ्जुश्रीका चित्र ऐसा बनाया जाता है, जिसमें उनके हाथमें ज्ञान और पुस्तक होती है। इन दोनोंके सिवा मैत्रेय हैं, जो अजित भी कहाते हैं। बहुतेरे दूसरे बोधिसत्व भी हैं, वे सब दुखी मानव-समाज-पर इसलिये झुके रहते हैं कि उसे दुःखसे छुटकारा दिला दे।

महायानका उपदेश इस बातमें भारतीय धर्म भावनाके अनुकूल है कि परमतत्त्वके अनन्त रूप उसमें समा जाते हैं। वह हीनयान सिद्धान्तका उप योग उनलोगोंके लिये करता है, जो महत्तर कल्पनाके लिये तैयार नहीं। बहुत-से मार्ग हैं, जिनके द्वारा अज्ञ लोग सत्यतक पहुँचाये जा सकते हैं। महायान सम्प्रदायको अपनी सहिष्णुताके कारण, गम्भीरतर वास्तविकताको प्रकट करनेके लिये बहुतसे प्रतीकोंको स्वीकार और नयी अवस्थाओंको अङ्गीकार करना पड़ा। उसके अध्यात्म और धर्मकी प्रकृति हिन्दुत्वके शक्तिशाली प्रभावसे हुई है। हिन्दू विश्वदेवीके अनेक देव देवियाँ उसने ले लिये हैं। महायानमें निर्वाणका ऐसा वर्णन किया गया है जो पहलेसे ही सच्चा और सिद्ध है; वह कहींसे आता नहीं। ज्योंही हमारा अज्ञान दूर होता है, त्योंही उसकी अनुभूति होती है। निर्वाण प्राप्त या उत्पन्न नहीं किया जाता; वह सविच्छेद नहीं है और न नष्ट ही किया जा सकता है। वह प्रयोगसिद्ध अथवा शास्त्र विरुद्ध सब कोटियोंको अतिक्रमण कर जाता है। बुद्धि और प्रेम दोनो उसमें एक हो जाते हैं। जिन लोगोंमें बोधिचित्त जागता है, वे अपने सहप्राणियोंके उद्धारके लिये अपनेको उत्सर्ग कर देते हैं। निर्माणकी वास्तविकताको यह संसारी जीवन घटा नहीं देता। होना भी भाव है। यद्यपि यह जीवन मिथ्या है, तो भी अर्थरहित नहीं है। बिमलकीर्ति सूत्रमें लिखा है, 'जैसे कमलका फूल

सूखी भूमिमें नहीं उत्पन्न होता, पर काली और गीली मिट्टीसे उत्पन्न होता है, ठीक वही बात बोधिचित्तकी है। राग और पापके द्वारा बुद्धत्वके बीज और कलियाँ खिल पाती हैं।' जब हम बोधि-चित्तको बुद्धका आवश्यक गुण समझकर प्रगति देते हैं, तब हमारा सब बुद्धोंसे एकाकार हो जाता है। हममें करुणा और प्रज्ञाका अविर्भाव होता है।

महायान बौद्धधर्म लोगोंको स्वर्गकी ओर ही नहीं बुलाता, पर इस उद्देश से व्यवस्थित और स्वस्थ जीवन बितानेको कहता है जिससे सबलोग सुखी हो सकें। संसारमें धर्मकी भावनासे जीवन अनुप्राणित होना चाहिये। जैसे अर्हत्का आदर्श बोधिसत्त्वके आदर्शसे बदल दिया गया है, वैसे ही साधुका आदर्श गृहस्थसे बदल दिया गया। अभिप्राय यह था कि संसारमें रहें तो सही, पर संसारी होकर न रहें। पवित्र अर्हत्की परम्परा तो चलती रही, पर धार्मिक गृहस्थका आसन भी ऊँचा किया गया। विमल-कीर्ति निर्देश नामक संस्कृत-ग्रन्थमें बताया गया है कि हम किस तरह लोगोंमें मिल सकते हैं, घरोंमें रह सकते हैं और साधारण मनुष्यों और पापियोंके मित्र बनते हुए भी साधु रह सकते हैं। विमलकीर्ति वैशालीमें रहता था, परन्तु केवल प्राणियोंके उद्धारके आवश्यक साधनोंके लिये ही। वह बहुत अधिक धनी था। सदा गरीबोंकी चिन्ता किया करता था। आत्मसंयममें शुद्ध, सब शीलोंका पालन करनेवाला, धैर्यके द्वारा क्रोधको दूर करनेवाला, उद्यमके द्वारा सब आलस्यको भगानेवाला, एकाग्र ध्यानद्वारा मनका सम्भ्रम दूर करनेवाला, पूर्ण बोधिके द्वारा अज्ञानको दूर करनेवाला था। यद्यपि वह साधारण गृहस्थ था, तथापि शुद्ध साधु अनुशासन मानता था; यद्यपि घरमें रहता था, तथापि किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं करता था। यद्यपि उसके स्त्री बच्चे थे, तथापि वह सदा शुद्ध धर्मका पालन करता था; कुटुम्बसे घिरे रहनेपर भी सांसारिक सुखोंसे दूर रहता था; यद्यपि संसारके जवाहर गहने पहनता था, तथापि आध्यात्मिक शृंगारसे सजा हुआ था; यद्यपि

खाता और पीता था, तथापि ध्यानके आनन्दका स्वाद लेता था; यद्यपि जुआड़खानेमें जाता था तथापि जुआड़ियोंको सीधे रास्तेपर ले जाता था, यद्यपि पाखण्डियोंसे उसकी भेंट हो जाती थी, तथापि वह अपने धर्ममें अन्तर नहीं आने देता था; यद्यपि सांसारिक विद्याका उसे पूर्ण ज्ञान था, तथापि बुद्धकी शिक्षाके अनुसार आत्मिक वस्तुओंमें उसे प्रसन्नता होती थी; यद्यपि सब व्यवसायोंसे उसे लाभ होता था, फिर भी वह उनमें डूब न जाता था। वह सब प्राणियोंका हित करता था। जहाँ कहीं इच्छा होती थी, जाता था। जब विद्यामन्दिरमें प्रवेश करता था, तब लड़कों और अज्ञोंको सदा सिखाता था; जब वेश्यालयमें जाता था, तब अनुरागकी सब भूलें व्यक्त करता था; जब कलवारकी दूकानपर जाता था, तब सबलोगोंको उच्च वस्तुओंकी खोजके लिये प्रेरित करता था; जब धनियोंमें जाता था, तब शासनका उपदेश देता था; जब क्षत्रियोंमें जाता था, तब उनको धैर्य सिखाता था; ब्राह्मणोंसे अन्याय दूर कराता था; महामंत्रियोंको न्याय सिखाता था; राजपुत्रोंको राजनिष्ठा और पितृभक्ति सिखाता था; रनिवासकी स्त्रियोंको ईमानदारी सिखाता था; और जनताको धर्मप्रेमकी ओर प्रेरित करता था।'

महायानकी शिक्षा भगवद्गीताके अद्वैतवादके उपदेशके समान है।

चीनमें बौद्ध धर्म

चीनमें जब बौद्ध धर्म पहुँचा तो, उसके अनुसार वातावरण तैयार हो चुका था। कनफ्यूशसका मत अध्यात्मके प्रश्नोंका उत्तर न दे सकता था और न धर्मकी जिज्ञासाको ही शान्त कर सकता था; और ताओमत धार्मिक कल्पनाकी इच्छा—किसी अज्ञात वस्तुकी आकांक्षा उत्पन्न कर चुका था, जिससे शाश्वतकी आशा और प्रकाशसे जीवन पूर्ण हो जाय। उसने यहाँतक भी संकेत कर दिया था कि ऐसा धर्म पश्चिम अर्थात् भारतसे आवेगा। ऐसी अवस्थामें जब बौद्ध धर्म चीनमें पहुँचा, तब

कनफ्यूशस और ताओ-मतोंके दर्शनोंसे मिलकर उसने विशेष प्रकारके धर्मका रूप प्राप्त किया। इसमें ध्यान, ज्ञान और समाज-सेवाके मिश्रणपर ज़ोर दिया गया। ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनो मिला दिये गये, इसलिये चीनके बुद्धिमानों और अध्यात्मप्रिय लोगोंको अपनी ओर आकर्षित कर सका।

बौद्ध धर्म भिक्षुओं वा संसारत्यागियोंका धर्म था, परन्तु चीनमें मृत मातापिताके प्रति भक्तिभाव बड़ा प्रबल था, इसलिये वहाँ उसे अपना रंग थोड़ा बदलना पड़ा और मृतोंके आत्माओंके लिये पिण्डादि-की व्यवस्था उसको ठीक करनी पड़ी। अवश्य ही मृत्युके पश्चात् जीवनकी जो आशा मनुष्यमें स्वाभाविक होती है, उसको इसने पूर्ण किया। चीनियोंपर नैतिक उद्यमके और कर्मके द्वारा उद्धारके सिद्धान्तका बड़ा प्रभाव पड़ा। समझदार लोगोंके लिये यह बड़ा सहारा रहा कि विश्व व्यवस्थित है और मनुष्य अपने भाग्यका निर्णायक आप है। ताओ-मतके कुछ देवताओंको भी बौद्धोंने अपना लिया।

सबसे पहला बौद्ध ग्रन्थ जो चीनी भाषामें भाषान्तरित हुआ और जिसके भाषान्तरकार काश्यपमातङ्ग थे, उसका नाम '४२ खण्डोंका सूत्र' है। इसमें कर्म और पुनर्जन्म, ध्यान और तपस्या और सब जीवोंकी पवित्रता-का उपदेश है। इसमें अर्हत् तो आदर्श बताया गया है पर बोधिसत्त्व-की कल्पनाकी चर्चा नहीं है। चीन जैसे देशमें भिक्षु धर्म चल नहीं सकता। इसलिये सूत्रमें गृहस्थ-जीवनकी महत्ता दिखायी गयी है। यदि किसी भिक्षुको स्त्रियाँ मिल जायँ, तो उनमें जो छोटी हों, तो उनके साथ बहन या लड़कीका-सा व्यवहार करे और बूढ़ी हों, तो माँका-सा। हीनयान सम्प्रदायके अन्य ग्रन्थोंका भाषान्तर ई० सन्के तीसरे शतकमें हुआ। ४०० ई० के बाद हीनयान सम्प्रदायके साहित्यमें कमी आ गयी, यद्यपि ह्यूनत्सांग जब हिन्दुस्थानसे लौट गये तो सर्वास्तिवादके ग्रन्थोंका चीनी भाषामें उल्था करानेमें बड़ा अनुराग दिखाया। वसुबन्धुके अभिधर्म

कोष शास्त्रका उल्था तो बहुत पहले ही हो चुका था। चीनमें हीनयान सम्प्रदाय इस कारण लोकप्रिय नहीं हुआ कि उसमें उसका अध्यात्म शास्त्र बहुत पाण्डित्यपूर्ण और आचारशास्त्र संशोधक वृत्तिका था। जो मतभेद भारतवर्षमें उत्पन्न हो चुका था, वह चीन पहुँचे बिना न रहा। महायान सम्प्रदायके ग्रंथोंने चीनियोंके मनपर इसलिये बहुत प्रभाव डाला कि उनमें करुणा, पवित्रता और मृदुताके आदर्शोंपर बहुत ज़ोर दिया गया था। महायान सम्प्रदायका अध्यात्म गहन और ध्यानपरक तथा हेतुवादी और दृढ़ था। उसकी आचारनीति वैयक्तिक तथा सामाजिक थी। इसके सिवा महायान बौद्ध धर्म स्वदेशमें ही जब बन रहा था, तभी वह चीन पहुँचा। इसलिये चीनमें उसकी पुरोगति विशेष प्रकारकी हुई।

सन् १४८ ई० में पार्थियाके कुमार अंशिकाओ और उनके हिन्द-शाक्य साथी लोकरत्नने चीनी भाषामें अमितायुर्ध्यान सूत्रका अनुवाद किया। जिस बल आस्तिक्यवादके लिये चीन सैकड़ों वर्षोंसे तैयार हो रहा था, उसको इस ग्रन्थने और आगे बढ़ाया। बृहत् सुखावती व्यूह, प्रज्ञा पारमिता तथा अवतंसक सूत्रके अंशोंका उल्था चीनी भाषामें सन् १५० ई० में और सद्धर्मपुण्डरीक तथा ललित विस्तारका अनुवाद सन् ३०० ई० में हुआ। धर्मरत्नका समय सन् २६६ से ३१३ ई० है। इन्होंने सद्धर्म पुण्डरीकका भाषान्तर किया था, और उल्लम्बन सूत्रमें मृत पुरुषोंकी ही भक्ति दिखाकर इसे चीनमें लोकप्रिय कर लिया। कुमारजीव चीनमें सन् ३८३ ई० में पहुँचे और इन्होंने अश्वघोष और नागार्ज्जुनकी जीवनियाँ चीनी भाषामें भाषान्तरित कीं। अवतंसक सूत्रपर नागार्ज्जुनकी टीका तथा हरिवर्माका सत्यसिद्धि शास्त्र जैसे कुछ दार्शनिक ग्रन्थोंका भी उन्होंने भाषान्तर किया। भारतीय भिक्षु परमार्थने सन् ५५० ई० में अश्वघोषके महायान श्रद्धोत्पादका उल्था चीनी भाषामें किया। इसके उपरान्त चीनी भाषामें महायान सम्प्रदायके अन्य बहुतसे ग्रन्थोंका भी भाषान्तर चीनी भाषामें हुआ।

चीनके सम्राट् वूने (समय सन् २६५ से २९० ई० तक) और सम्राट् मिनने (सन् ३१३ से ३१६ ई० तक) बौद्ध धर्मके प्रचारमें बड़ा अनुराग दिखाया और नानकिंग तथा चङ्गनान् दोनो शहरोंमें १८० धार्मिक स्थान बनवा दिये। पीछेके सम्राटोंने भी जिनमें यूआन ती (समय सन् ३१७—३२२ ई० तक) मिंग ती (सन् ३२२—३२५ ई० तक) चांङ्ग ती (सन् ३२६—३४२ ई०) कियेन वेन ती (सन् ३७१—७२ ई०) हिआउ वू ती (सन् ३७३ - ३९६ ई०) और नगन ती (सन् ३९७—४१७ई०) हैं, बौद्ध धर्मकी संरक्षकता की। जिस वी घरानेकी स्थापना उत्तर की परदेशी-जातियोंने सन् ३८६ ई०में की थी और जिसका शासन ६ठी ई० शताब्दी-के मध्यतक रहा उसने भी बौद्ध धर्मके प्रचारको उत्तेजन दिया और कुमारजीव और पुण्यत्राता आदिके रचे बहुतसे बौद्धग्रन्थोंके भाषान्तर इसी युगमें हुए।

पवित्र भूमि या श्वेत् पद्म सम्प्रदाय

चीनी बौद्ध हुई युआनका जन्म सन् ३३३ ई० में हुआ और वे सन् ४१६ तक जीवित रहे। वे उत्तर चीनके शान्सी नगरमें पैदा हुए थे। उन्होंने महायान सम्प्रदायकी एक मुख्य शाखा बुद्धयशः और बुद्ध-भद्र जैसे भारतीय उपदेशकोंकी सहायतासे स्थापित की। यह सम्प्रदाय पहले ऐसे मठमें स्थापित हुआ था, जिसके पास एक तालाब था, जिसमें कमल खिला करते थे। इसलिये यह श्वेत पद्म सम्प्रदाय कहलाने लगा। परन्तु एक गुप्त राजनीतिक सभावालोंने १४वीं शताब्दीके प्रारम्भमें अपनी सभाका नाम यही रख दिया। इससे डरकर इन्होंने सम्प्रदायका नाम बदलकर पवित्र भूमि सम्प्रदाय रखा। महायान सम्प्रदाय अमिताभ-को सबका जनक मानता है, इसलिये हुई युआन और दूसरे ताओ मतावल-म्बिओंको अपनी गहरी धार्मिक आकांक्षाओंका उत्तर मिल गया। अमिता-यर्ध्यान सूत्र और बड़ा और छोटा सुखावती व्यूह तथा अश्वघोषका

विश्वासका जागरण इस सम्प्रदायके धर्म ग्रन्थ हुए। इस सिद्धान्तसे सब आध्यात्मिक-बारीकियाँ कट जाती हैं और यह सिखाता है कि अमिताभपर केवल विश्वास करनेसे और उनका नाम जपनेसे मोक्ष मिल जाता है। इस शिक्षाका मूल प्राचीन है और इसका प्रभाव सार्वत्रिक है, इसलिये यह अलग पन्थ नहीं बना। दूसरे सदस्य अमिताभकी पूजाको मोक्षका एक मार्ग मानते हैं, यद्यपि एक मात्र अथवा सर्वोत्तम मार्ग नहीं मानते। अश्वघोषके महायान श्रद्धोत्पादमें यह एक सूत्र आया है, 'यदि कोई मनुष्य केवल अमिताभ बुद्धका ध्यान करे जो सुखावतीमें हैं और यदि उसके सुकर्म ठीक दिशामें हैं, और यदि वह सुखावतीमें जन्म लेनेकी इच्छा करता है, तो वह वहीं जन्म लेगा और चूँकि वह बुद्धके सान्निध्यमें सदा रहेगा इसलिये कभी न पिछड़ेगा। यदि हम अमिताभ बुद्धके शाश्वत स्वभावका ध्यान करें और बराबर इस उपायका अभ्यास करें, तो हम अन्तमें भावी बुद्धके स्थानको पहुँच जायँगे।'

अमिताभकी कल्पना कैसे उत्पन्न हुई, इस विषयमें कई प्रकारकी बातें कही जाती हैं। कहते हैं कि बुद्धत्वतक पहुँचनेके जितने पद हैं, सब चलकर अन्तिम समयमें वे सुखावतीमें जन्मे। उस समयसे वे फिर अवतार न ले सके और दो बोधिसत्वोंद्वारा वे काम करते हैं, जो सृष्टिकी सहायता करते हैं। कोई कोई कहते हैं कि गौतमसे उनमें तीन पीढ़ियोंका अन्तर है और कुछ कहते हैं कि अमिताभका ही अन्तिम अवतार गौतम है। कुछ और लोगोंका कहना है कि अमिताभ ही सब बुद्धोंका सामूहिक नाम है। उस नाममेंही बुद्धत्वके सब आवश्यक गुण हैं। "ओमीतोफू" में 'ओ' है साधुता; 'मी' है नैतिक आचरण; "तो" है ध्यान और 'फू' है प्रज्ञा। सुखावती व्यूहमें बताया गया है कि अमिताभने जीवित प्राणियों-का दुःखसे उद्धार करनेके हेतु कैसे ४८ महाव्रत लिये। कैसे उन्होंने पथ-भ्रष्ट प्राणियोंकी रक्षाके लिये अनन्त पुण्यका सञ्चय किया और कैसे वे 'अनन्त युग और दीप्तिके बुद्ध हुए।' यदि हम अमिताभके पीछे पीछे

अन्तिम सीमातक चलें तो हम उन्हें अपनी ही आत्मामें प्राप्त कर लेंगे। गौतम बुद्ध पृथिवीपर इस उपदेशके जनक और समाजके उपदेष्टा हुए।

चीनी भिक्षु यूनची, अमिताभकी प्रतिज्ञाका उल्लेख इन शब्दोंमें करते हैं—,'यदि कोई प्राणी मेरे राज्यमें जन्म लेनेकी इच्छा करता हो और श्रद्धा और प्रसन्नतासे १० बार मेरा नाम जपे, तो कोई उस बड़े अनुभवसे वंचित न किया जायगा और मेरी व्यवस्थाको प्राप्त करेगा ही, वह ईश्वरको प्राप्त करेगा।'

यह भक्तिमूलक धर्म शुद्ध आदर्शवादपर स्थापित है और इसकी केन्द्रीय प्रार्थना है चीनी भाषामें—नोमो ओमिलोफू; जापानीमें, 'नमो अमिदो बुत्सु; और कोरियाकी भाषामें—नमो अमिदो पुल। जिनका अर्थ है, मैं भक्ति, श्रद्धापूर्वक अमिताभको नमस्कार करता हूँ। यह प्रार्थना दक्षिण चीनसे मञ्चूरियातक, जापानसे कोरिया और साइबेरियाकी सीमातक गूँजा करती है। यह प्रार्थना ईश्वर हृदयका रास्ता खोलती है; उस नामकी राह बताती है जो सब नामोंके ऊपर है। वह नाम जिससे प्रत्येक मनुष्यको आत्मज्ञान होता है और वह बुद्ध बनता है।

इस सम्प्रदायके दूसरे बड़े उपदेशक हुए हैं तानहुआन (सन् ५०२—५४९ई०)। इन्होंने अमिताभकी कल्पनाको यत्नपूर्वक और विशद् किया। जिन शानताओका देहान्त सन् ६८१ ई० में हुआ, उनके द्वारा अमिताभकी कल्पनामें शाश्वत जीवन और ईश्वर-दूत-उद्धारकके विचार और बढ़ा दिये गये। अमिताभ और उनकी शक्ति तथा अनुग्रहके दो बड़े-बड़े प्रकाशक मिलकर त्रिमूर्ति हो गये और त्रिमूर्त्ति 'फू' पर श्रद्धा करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है यह कल्पना दृढ़ हुई। यद्यपि पवित्र भूमि सम्प्रदायका विश्वास है कि अमिताभकी चमकती हुई करुणा और अनुग्रहके हृदयका मार्ग भक्तिद्वारा है, तो भी मनन और ध्यानका वर्जन नहीं है। इस ज्ञानसे अमिताभपर श्रद्धा उत्पन्न की जाती है कि सारी सृष्टि उनके अन्तर्गत है और अमिताभ

उसका केन्द्र है, जिसका ध्यान किया जाता है। प्रत्येक बौद्ध विहारमें ध्यानके लिये मूलगन्धकुटी होती है। मिङ्ग वंशके अन्तिम वर्षोंमें जो हिसी मिङ्ग था, उसने कहा है कि 'मैं आदरपूर्वक उन सबको उपदेश करता हूँ, जो बुद्धका नाम लेते हैं कि सच्चे हृदयसे उसीपर लगे रहें और धीरे धीरे उसी स्थानपर पहुँच जायँ, जहाँ हृदय किसी प्रकार विक्षिप्त नहीं किया जा सकता है। जब कमलकी कली आपसे आप खिल जायगी, तब हृदय बुद्धको देखेगा।'

यह सम्प्रदाय महायानका ही विकसित रूप है, क्योंकि यह ऐतिहासिक बुद्धको शाश्वत सत्य, जो धर्मकाया या तथता कहलाता है, उसीका एक अभिव्यञ्जन समझता है जिसका शब्दोंसे वर्णन नहीं हो सकता। वह बोधिसत्व यान अथवा बोधिसत्वोंके मार्गपर विश्वास करता है। उसमें दीक्षित होनेके लिये हमलोगोंको प्रयत्नशील मानव जातिके लिये त्याग-का जीवन बिताना है। महायानका यह सम्प्रदाय उद्धार करनेवाली श्रद्धा और महा नवजीवनपर जोर देता है क्योंकि ये हमें सुखावतीमें ले जाते हैं, जहाँ सबका महाकरुणामय पिता शासन करता है और जिसने प्रबलतमको पृथिवीपर मानुष रूपमें भेजा है, जो अब अपने करुणामय भावसे आदमियों-को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह चीनकी धार्मिक आत्माओंको नयी भक्ति देता है, जिसने उनके हृदयोंको हिला दिया है।

च्यान बौद्ध मत

च्यान बौद्ध मतके संस्थापक बोधि-धर्म हैं। ये दक्षिण भारतकी कांची-पुरीके निवासी थे और ईश्वर प्रेरित उत्तराधिकारियोंमें अपनेको गौतमसे २८ वां कुलपति मानते थे। इन्होंने अपने जीवनके ९ वर्ष सन् ५२७–५३६ ई० तक चीनमें लोयाङ्गके पास शाओलिन विहारमें बिताये थे। इनकी लोकप्रियता बहुत नहीं बढ़ी, पर वे 'भित्ति दृष्टिक्षेपक ब्राह्मण' प्रसिद्ध हुए। बोधि-धर्मके समयमें महायान बौद्ध धर्मका आधार बाहरी

आश्रय था। जब नानकिङ्गमें रहनेवाले सम्राट् लिआन-वू-तीने बोधि धर्मको बताया कि बौद्ध धर्मकी उन्नतिके लिये मैंने कैसे भवन बनवाये और कैसे ग्रंथरचनाको उत्तेजन दिया, जिसमें साधारण लोगोंमें उसकी जड़ जम सके तो बोधिधर्मने उत्तर दिया, 'ये सब बाहरी बातें हैं जिनका कोई लाभ नहीं; वास्तविक मूल्यवान वस्तुएँ वे हैं, जो भीतरी पवित्रता और बोधिसे प्राप्त होती हैं। और ये चुपचाप ध्यान और मनन करनेसे आती हैं। परमतत्त्व सब वर्णनके परे है।' जब विमल कीर्तिने मञ्जुश्रीसे पूछा कि 'अद्वैतका वह सिद्धान्त जिसे एक बोधिसत्त्वने प्रकाश किया है', वह क्या है, तो मञ्जुश्रीने उत्तर दिया, 'जैसा मैं उसे समझता हूँ, उस सिद्धान्तका अनुभव उस समय हो जाता है, जब मनुष्य वस्तुओंको सब प्रकारके वर्णन और दर्शनसे परे समझ लेता है और मानता है कि ज्ञान और तर्कको वह अतिक्रमण कर जाता है। यह मेरी समझ है, आपकी समझ क्या है?' विमल कीर्ति चुप रह गये। मौन ही यथार्थ गूढ़ उत्तर है। जो नया ज्ञान बुद्धने बोधिद्रुमके नीचे प्राप्त किया, उसका उन्होंने अपने अनुयायियोंमें प्रचार करना चाहा। बोधिधर्मने यह सिखलाया कि त्वरित बोधिका अनुभव ही मनुष्यको ध्यान धारणाद्वारा प्राप्त करना चाहिये।

बोधिधर्मने महायान दृष्टिकोणकी व्याख्या क्रम के रूपमें की है जिससे मनुष्यके हृदयमें उसका प्रकाशन किया जाय। वे बताते हैं कि गूढ़ कल्पनाकी तहमें सार्वत्रिक सत्य हैं। ये आत्मिक सत्य शास्त्रीय प्रमाण अथवा लोकप्रिय पूजापर निर्भर नहीं हैं। स्वर्गका राज्य मनुष्यके हृदयमें है। अमिताभके स्वर्ग अथवा बुद्धों या बोधिसत्वोंके पुराणकथामूलक इतिहासोंकी आकर्षक कल्पनाको बोधिधर्म महत्व नहीं देते। बुद्धको मूर्तियों या शास्त्रोंमें नहीं, वरंच मनुष्यके हृदयमें ढूँढना चाहिये। वे मूर्ति पूजा नहीं करते थे तथा पौरोहित्यकी बुराइयोंकी निन्दा करते थे।

चीनी लोगोंकी लाक्षणिक प्रवृत्ति वैराग्य धर्म और संसारकी निन्दा

करनेकी न होनेपर भी, उनमें एक ऐसा सम्प्रदाय बराबर रहा है, जो साधु जीवनमें ही आनन्द मानता है। बौद्ध धर्मने उन लोगोंको अवसर दे दिये, जो ध्यानका आनन्दातिरेक आत्माका सच्चा जीवन समझते थे। प्रज्ञा, शान्ति और हर्ष इन लक्षणों-सहित सम्यक् समाधि अष्टाङ्ग मार्गका उद्दिष्ट स्थान है। बोधिधर्मने ध्यान या अनुशासनके उस अभ्यासको उत्तेजन दिया जिससे हम अपने विचारका नियंत्रण करते हैं और सब वस्तुओंको छोड़कर किसी विशेष वस्तुपर ध्यान लगाते हैं। ध्यानके द्वारा हम शान्ति और विश्रान्ति पाते हैं। धर्मका आवश्यक उद्देश शाश्वत सत्यको जानना है, जो सदा प्रकट होता रहता है, परन्तु प्रकट किया नहीं जाता। शास्त्र भी वहींतक मूल्यवान हैं जहाँतक वे सत्यके अनुभवमें सहायक हैं। हमलोग प्रकृतिके अनुशीलनसे सत्य सीख सकते हैं।

बोधिधर्मने वू तीके दरबारमें जो व्याख्यान दिया था, उससे उनके उपदेशका अच्छा सारांश मिल जाता है। उसमें उन्होंने जो कहा था, वह इस प्रकार है, 'हृदय बुद्ध है; उसके बाहर कोई सत्य नहीं; विचार-के सिवा सब कुछ मिथ्या है। मन और हृदयसे अलग न कोई कार्य है न कारण। निर्वाण आप हृदयकी अवस्था है। अपनेमें ही तू बुद्ध-स्वभाव देख——सच्चा बुद्ध स्वभाव। तू जान कि तू ही बुद्ध है और पाप नहीं कर सकता। न कुछ अच्छा है न बुरा, पर केवल हृदय है और बुद्ध है और निर्दोष है।........ एक पाप अवश्य है और वह है अपने बुद्धत्वकी उपेक्षा करना।.........यह वही अज्ञान है जिससे संसारका चक्र चलता है, वह बोधि है जो कर्मशक्तिको नष्ट करती है। बुद्ध न पाप कर सकता है न पुनर्जन्म ले सकता है। ऐ मनुष्य-हृदय तू इतना बड़ा है कि संसार-का आलिङ्गन कर सकता है और इतना छोटा है कि सूईकी नोकसे छुआ नहीं जा सकता। तू बुद्ध है। चीनको मेरा यही उपदेश है।'

बोधिधर्मके उपदेशोंने बौद्ध मतकी कई शाखाओंको मिलाकर व्यापक सम्प्रदाय बना दिया। ध्यानपर उनके आग्रहसे उनके कितने ही

अनुयायियोंको प्रज्ञा और गम्भीर शान्ति प्राप्त हुई। परन्तु उसने निर्जीव और निष्क्रिय धार्मिकता भी उत्पन्न की, जिसका फल सदा मनुष्यकी भलाई ही नहीं हुआ।

ति-एन-ताई सम्प्रदाय

प्रथम चीह ति-एन-ताई-सम्प्रदायके मुख्य प्रतिनिधि माने जाते हैं। व छठे शतकके उत्तरार्धमें थे और उन्होंने अपने जीवनका बहुत-सा भाग चेकियांग प्रदेशमें बिताया था जहाँ सन् ५९७ ई० में उनकी मृत्यु हुई। यहीं ति-एन-ताई-पहाड़ोंमें जहाँ भिक्षु जीवन प्रबल रूपसे विकसित हुआ था, उन्होंने अपना सम्प्रदाय खड़ा किया और ४००० से अधिक शिष्य किये।

प्रथम चीहका मुख्य सिद्धान्त बुद्धके विभिन्न वचनोंका समन्वय करना है और यह काम बुद्ध-जीवनको ५ विभिन्न अवस्थाओंमें बाँटकर उन्होंने किया है।

पहली अवस्था बोधि प्राप्त करनेके बादके प्रथम ३ सप्ताहोंकी है। बोधिसत्त्वोंके विषयकी शिक्षा इस समयकी है। दूसरी अवस्था उस समयकी है जब बुद्धने जाना कि साधारण मनुष्य उनका उपदेश न समझ सकेगा तो उन्होंने ४ सत्योंका निरूपण किया और बताया कि मनुष्य कैसे अर्हत्की अवस्था पा सकता है। यह १२ वर्षका युग हीनयान शास्त्रोंके प्रकाशनमें व्यतीत हुआ। तीसरी अवस्था उस समयकी है जब शिष्योंने जाना कि यही परम सत्य है, तो बुद्धने उनकी भूल बताई और कहा कि और भी बातें हैं। तुम केवल संत ही नहीं हो जाओगे, वरन् संसारके उद्धारके कामोंमें भी भाग लोगे। इस ८ वर्षकी अवधिमें महायान शास्त्रोंकी शिक्षा प्रकाशित हुई। चौथी अवस्था उस समयकी है जब मनुष्योंके मनमें हीनयान और महायानके पारस्परिक सम्बन्धमें भ्रान्ति उत्पन्न हुई, तो बुद्धने बताया कि महायान विचारसरणितक पहुँचनेके

लिये हीनयान प्रथम साधन है । यह बादके २२ वर्षोंका काम है । और महाप्रज्ञापारमिता सूत्र इस युगके उपदेशकी प्रतिमूर्ति है । (५) जब बुद्ध ७२ वर्षकी परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पाँचवीं अवस्था आयी । उन्होंने इस उच्च सिद्धान्तका उपदेश दिया कि प्रत्येक मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकता है और मैं इसी लिये पृथिवीपर आया हूँ तथा जन्मके बन्धनमें फँसा हूँ कि मैं सार्वलौकिक मोक्षका उपदेश दूं । इस युगकी शिक्षा सद्धर्म पुण्डरीकमें है, जो ति-एन-ताई सम्प्रदायका शास्त्र है । बादको यही समय महापरिनिर्वाण सूत्र और सुखावती व्यूह सूत्रका भी बताया गया है ।

इस चातुर्यपूर्ण वर्गीकरणसे विभिन्न विचारों और आचारोंको इसमें स्थान मिल जाता है और सहिष्णुताका भाव उत्पन्न होता है । इससे यह भी जाना जाता है कि अमिताभका अनन्त अनुग्रह है कि उन्होंने दुखी मानव समाजके लिये बहुतसे मार्ग निकाल दिये ।

यह सम्प्रदाय इस बातको नहीं स्वीकार करता कि ध्यान ही यथेष्ट है । इसने बताया है कि यद्यपि बुद्ध मन सब प्राणियोंमें है, तथापि भूलें दूर करने और सत्य विचारोंको प्रतिष्ठित करनेके लिये शिक्षाकी आवश्यकता है । यह सम्प्रदाय अधिकतर सार्वलौकिक था और इसमें साहित्य, कर्म-काण्ड, अनुशासन और ध्यानका हर्षातिरेक, इन सबके लिये स्थान था । प्रथम चीहने यह विचार स्वीकार किया कि परमसत्यकी दृष्टिसे सब दृश्य पदार्थ मिथ्या हैं, यद्यपि व्यावहारिक कामोंके लिये ये सब सत्य हैं । दृश्य पदार्थ हैं भी और नहीं भी हैं । प्रथम चीहने सत्यको वैयक्तिक नहीं माना, क्योंकि सब ऐसी बातें सापेक्ष हैं और मनुष्यके अनुभवसे ही शब्द सीमित हैं । बुद्धत्व सर्वोच्च सत्य ही नहीं है, परन्तु, वह क्रिया भी है जो सब प्राणियों-की भलाईके लिये निरन्तर होती रहती है । आगे चलकर ति-एन-ताई [illegible] बैठा और इन्द्रजालके मंत्रों और आमदा की पूजामें मिल गया ।

मंत्रयान बौद्धमत

मंत्रयान या तंत्रयान बौद्धमत पहले पहल ८ वीं ई० शतकमें प्रकट हुआ और यह तिब्बती बौद्धमतके समान ही है। इस सम्प्रदायका पहला चीनी कुलपति बज्रबोधि माना जाता है जिसने सम्प्रदायको सन् ७२० ई० में भारतसे जाकर स्थापित किया। इनके उत्तराधिकारी अमोघ बज्र भी भारतीय ही थे, जिन्होंने मृत मनुष्योंके लिये पिण्डको लोकप्रिय बनाया। अपने दार्शनिक रूपमें वह, लाक्षणिक वैश्वदेववाद है जो परमात्माको क्रमिक प्रवृत्तिमें प्रकट करता है और अपने लोकप्रिय रूपमें वह बहुदेवता-वाद और जादू है। उसका मुख्य देवता वैरोचन है, जो अमिताभके समान है। धर्मकाया अथवा भूततथताको महावैरोचनका रूप दिया गया है। यह सम्प्रदाय उन सबको मुक्ति दिलाता है, जो उनके कुछ मंत्र और रीतियाँ स्वीकार करते हैं। वह गूढ़ और साधारण सिद्धान्तोंमें भेद करता है। जो कुशल मनुष्य गूढ़ रूप जानता है, वह जीवित बुद्ध हो जाता है और उसे पूर्ण आन्तरिक ज्ञान रहता है।

वैरोचन ही सारा संसार है और उसके दो स्वरूप हैं—एक गर्भधातु और दूसरा बज्रधातु; और दोनों मिलकर धर्मधातु बन जाते हैं। वैरोचनके शरीरका अभिव्यञ्जन उसके लिये कई चक्रोंका लाक्षणिक रूप बतानेसे होता है। जिस कारणसे विश्व केवल भाव है, विचार उसी प्रकार प्रबल शक्तियां हैं। मंत्र, यंत्र और जादूके गुरोंके प्रयोगोंकी मुख्यता हो जाती है।

चीनियोंने तंत्रयान या मंत्रयान को ८ वें शतकके उत्तरार्द्धमें स्वीकार किया। अन्त्येष्ठि संस्कार चीनी धर्मका एक महत्वपूर्ण अंग है और जो रीतियां आत्माके भाग्यका नियंत्रण करती हैं, वे महत्वपूर्ण बन जाती हैं। मृत मनुष्यके लिये पिण्ड चीनी बौद्धमतका मुख्य अङ्ग है। और वह बहु[illegible] गूढ़ विश्वाससे मिला हुआ है। जन्म और मृत्युके निरन्तर चक्रमें ६ क्रम बताये गये हैं। सबसे ऊंचा स्वर्ग है, जहां सज्जन रहते हैं।

यह अवस्था परमतत्वकी प्राप्तिके पहलेकी है। बोधिसत्त्व इस प्रदेशके लोग हैं। इसके बाद हम मानुषी क्रमपर पहुँचते हैं। यहां व्यक्तियोंके भाग्यका निर्णय कर्म करता है। यहां बहुतसे दर्जे हैं। चीनियोंको अपने पूर्व पुरुषोंकी भक्ति करनेकी शिक्षा तो पहलेसे ही मिली थी पर बौद्धोंने उनकी यह राष्ट्रीय आकांक्षा पूर्ण की है।

लामाई बौद्धमत

८ वें ई० शतकमें तिब्बतमें लामा-मतवादका विकास हुआ। उस समय भारतमें मंत्रयान प्रमुख सम्प्रदाय था और जब वह तिब्बतमें आया तब स्थानीय पिशाच पूजासे मिल गया। पद्मसम्भव तांत्रिक बौद्धमतके प्रसिद्ध व्याख्याता थे। उन्होंने ल्हासासे ३० मीलपर समये में मठ बनाया और शान्तिरक्षित उसके महंत बने। इसी समयसे लामा सम्प्रदाय-की नींव पड़ी। मनुष्यके सहायक क्रोधपूर्ण पिशाचके रूपमें बताये गये हैं जिसमें वे बुराईके गणोंको डरा सकें। इसका फल यह हुआ कि लामाओंके मन्दिर भूत पिशाच पूजाके घर जान पड़ने लगे।

तिब्बतके लामा मतके मुख्य लक्षण ये हैं—(१) भूत पिशाचोंको वशमें करने और अतिनैसर्गिक शक्तियाँ प्राप्त करनेके लिये धारणी और मण्डलोंका प्रयोग। धारणी (झाड़ फूँक) और मण्डल (जादूकी आकृतियाँ) हैं।

(२) यह विश्वास कि ऐसे उपायोंसे कोई कुशल मनुष्य देवताका आवाहन ही नहीं कर सकता, वरञ्च उसका रूप धारण कर सकता है और स्वयं देवता बन सकता है।

(३) अमिताभकी पूजा और उनके स्वर्गपर विश्वास।

(४) मृत मनुष्योंके लिये कुछ क्रियायें करना और मांस को छोड़कर अन्य पदार्थोंका उत्सर्ग करना।

(५) लोकान्तरित और जीवित गुरुओंकी पूजा।

११वें शतकमें अतिश और दूसरे आचार्योंके मतके अनुसार काल-चक्र नामका एक नया विकास हुआ जिसके अनुसार एक आदि बुद्ध हैं और उन्हींसे दूसरे बुद्ध उत्पन्न हुए हैं। कोई विशेष देवता आदि बुद्ध बता दिया जाता है। इस सिद्धान्तपर कि परमात्मा सृष्टि रचनेके लिये स्त्री और पुरुष दोनों हो गया, मुख्य बुद्धों और बोधि सत्वोंकी पत्नियाँ भी बना दी गयीं। इस नयी शिक्षाका साधारण प्रभाव असन्तोषजनक हो रहा।

लामाई बौद्धमत उत्तर चीनमें सन् १२८० से १३०० ई० तक मंगोल घरानेके शासनकालमें फैला। लामामत और बौद्धधर्मके अन्य रूप अलग अलग नहीं समझे जाते। लामामतके अनुयायी इस बातका आग्रह नहीं करते कि पुरोहित अविवाहित रहें, और ऐसे बहुतसे लोग दिखाई देते हैं जो पुरोहित हैं और विवाहित भी हैं, पर मठोंमें नहीं रहते हैं। लामामत चीनमें मंगोल सम्राटोंके समयसे आया है, इसलिये चीनी बौद्धोंके मामलेमें तिब्बती महंत मुखिया बनकर काम करते हैं। राजनीतिक कारणोंसे भी तिब्बती बौद्धमतको चीनमें उत्तेजन दिया जाता है।

चीनमें जो बुद्ध मन्दिर हैं, वे अलग अलग आकार-प्रकारके हैं। जिनमें कोई पर्वत-शिखरपर हैं, कोई पर्वतके ढालपर हैं और कोई नदी किनारे हैं। इन मन्दिरोंमें मूलगन्धकुटी है, अतिथिशाला है, पुस्तकालय है और पद्मपुष्कर है। जो मूर्तियाँ हैं, उनमें एक स्वर्गीय बुद्ध हैं, जिनमें गौतम बुद्ध, अमिताभ (भैषज्य गुरु संसारके वैद्य) वैरोचन, लोशान और दीपंकर दिखाई देते हैं, दूसरा बोधिसत्वोंमें क्वु-आन-यिन मैत्रेय, मञ्जुश्री समन्तभद्र; तीसरा अर्हतोंमें बुद्धके पहले शिष्य और बोधिधर्म जैसे—शिष्य हैं; और चौथा रक्षक है।

परिशिष्ट (अ)

मंगोलिया और मंचूरियाकी वर्त्तमान स्थिति

चीन महाराज्यके मंगोलिया और मंचूरिया भागोंका कुछ वर्णन पहले अध्यायमें किया गया था, परन्तु दूसरे महासमरके परिणामस्वरूप उनकी स्थितियोंमें परिवर्तन हो गया है। ११ फरवरी १९४५ को रूसके काले समुद्रके यालटा बन्दरमें तीन बड़ों—रूजवेल्ट, स्तालिन और चर्चिलका सम्मेलन हुआ था। इसमें तीनोंमें जो गुप्त समझौता हुआ था, उसके अनुसार सोवियत संघने इन शर्तोंपर जापानसे युद्ध करना स्वीकार किया था :—

१—बाहरी मंगोलियाकी स्थिति ज्योंकी त्यों रहेगी अर्थात् वहाँ मंगोलियन पीपल्स रिपब्लिक (मंगोल जातिका प्रजातन्त्र) रहेगा।

२—१९०४ के जापानके विश्वासघातक आक्रमणसे रूसके पहलेके जो अधिकार नष्ट हुए थे, वे उसे फिर मिल जायँगे। अर्थात्

(अ) सखालिनका दक्षिणी भाग और उससे लगे हुए टापू सोवियत संघको लौटा दिये जायँगे।

(आ) डेरेनका व्यापारिक बन्दर अन्तरराष्ट्रीय बना दिया जायगा और इसमें सोवियत संघके विशेष हितकी रक्षा की जायगी तथा पोर्ट आर्थरका पट्टा नौसैनिक अड्डेके रूपमें रूसको मिल जायगा।

(इ) चीनकी पूर्वी रेललाइन और दक्षिणी मंचूरियाकी लाइन जो डेरेनको जाती है, रूस-चीनकी संयुक्त समिति द्वारा इन दोनोंका

सञ्चालन होगा। यह निश्चित है कि सोवियत संघके विशेष हितोंकी रक्षा होकर भी मंचूरियापर चीनका पूर्ण राजत्व रहेगा।

३—क्यूराइल द्वीपपुञ्ज सोवियत संघको दे दिये जायँगे। यह जाना हुआ है कि उक्त बाहरी मंगोलिया, रेल लाइनों और बन्दरगाहोंके समझौतेपर जेनरलिसिमो च्यांग काइ शेककी सहमति आवश्यक है। प्रेसिडेंट रूजवेल्ट स्तालिनके कहनेपर ऐसी सहमति प्राप्त करनेका उपाय करेंगे। तीनों शक्तियोंके नेता इसपर सहमत हैं कि सोवियत संघके ये दावे जापानके पराजयके बाद बिना पूछे-जांचे माने जायँगे।

इस समझौतेके अनुसार रूस-चीन सन्धि हो भी गयी है। इससे मंचूरियाके दोनों रेलमार्गों और दोनों महत्वपूर्ण बन्दरगाहों अर्थात् डेरेन और पोर्ट अरथरपर रूसका प्रभाव हो गया है। १९१७ की रूसी क्रान्तिके बाद जो एक लाख रूसी मंचूरियामें जा बसे थे, उन्हें १६ नवम्बर १९४५ को रूसी सरकारने रूस [illegible] गरिकके अधिकार देनेकी प्रतिज्ञा की है। यदि ये रूसी नागरिक बन गये, तो मंचूरियामें रूसका प्रभाव ही बढ़ावेंगे।

ऐंग्लो-अमेरिकाको आपत्ति थी कि रूस मंचूरिया नहीं खाली कर रहा है। पर रूसके मंचूरिया खाली करते ही वहाँ रूसी कम्यूनिस्ट जा डटे हैं। वहांके मुख्य नगर चांगचुनपर कम्यूनिस्टोंका कब्जा है। अब उनमें और च्यांगकी सेनामें वहाँ युद्ध हो रहा है। मंचूरिया यदि चीनमें रहा तो संयुक्त चीनपर अमेरिकाका प्रभाव रहेगा। पर यह सोवियतको कब पसन्द होगा? मंचूरियामें चीनी कम्यूनिस्टों और कोमिंताङमें भयंकर युद्ध हो रहा है, इसलिये इसका भावीरूप अनिश्चित है।

चीन महाराज्यसे मंगो[illegible]लिया भी निश्चित रूपसे पूर्ण स्वतन्त्रताका यह आकांक्षी है। बाहरी मंगोलिया[illegible]की स्वाधीनतामें रूसका अनुराग स्पष्ट ही परिलक्षित होता है, इसीसे तो याल[illegible]के समझौतेमें इनका उल्लेख है। १[illegible] फरवरी १९४६ का तिन्तसिनका [illegible] समाचार है कि रूसकी छत्रछायामें भीतरी मंगोलियामें भी स्वतन्त्र शासन[illegible] की स्थापना हो रही है। इसके

मुखिया लें० पी० ए० हसिनजेन बताये जाते हैं। ये मंगोलियन पीस प्रिज़रवेशन कोर (शान्ति रक्षकदल) के भूतपूर्व कमांडैंट और उस कौन्सिलके एक प्रमुख हैं जिसमें चीनी कम्यूनिस्ट और रूसी सैनिक परामर्शदाता हैं।

परिशिष्ट (आ)

कोरियाकी स्थिति

मंचूरियाके दक्षिण पीले समुद्र और जापानी समुद्रके बीचमें कोरिया नामका प्रायद्वीप है, जिसपर किसी समय चीनका प्रभुत्व था, पर जिसे जापानने स्वतंत्र करनेके बहाने अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था। जापानके पराजयके फलस्वरूप ८५००० वर्गमीलमें बसे हुए २,८०,००,००० मनुष्योंका यह देश जापानसे तो स्वतंत्र हो गया, पर वास्तवमें स्वतंत्र नहीं हुआ, क्योंकि उत्तर भागपर रूसका और दक्षिण अमेरिकाका अधिकार है। अमेरिकाने दक्षिण मार्गियोंका शासन स्थापित किया है और रूसने सोवियत पद्धतिका।

कोरिया

जापानने कोरियाकी स्वाधीनता तो छीन ली थी, पर उसकी और प्रकारसे उन्नति ही की थी। वहाँ साक्षरता भारत और चीनसे भी [illegible] सैकड़े ६० मनुष्य वहाँकी लिपिमें लिख पढ़ [illegible] हैं। जापानियोंने उसमें उद्योगधन्धे भी चलाये, यद्यपि फी सैकड़े ९५ कारखानोंके मालिक जापानी ही थे। जमीनपर भी जापानियोंका ही अधिकार विशेष रहा, उन्हींके हाथ खेत खलिहान रहे। रेल, तार, टेलिफोन, जहाज चलाना, बिजलीके कारखाने, कोयले, लोहे और सोनेकी खानें, भारी और हल्के उद्योग-धन्धे, थोक और खुदरा दूकानें, बैंकें और बीमा कम्पनियाँ आदि

सब जापानी सम्पत्ति कोरियाकी हो गयी। यह सम्पत्ति डेढ़ दो अर्ब डालरकी होगी।

अब प्रश्न यह है कि कोरियावासी अपना शासन करनेके योग्य हैं या नहीं इसका उत्तर डा० अंडरउड देते हैं कि हैं। परन्तु रूस और अमेरिकाके सिद्धान्तोंके बीचमें कोरियाकी स्वाधीनताका बध हो रहा है। कोरियामें स्वाधीनताके आन्दोलनने पहले महासमरके बादसे जोर पकड़ा है। उस समय जिन्होंने जापानियोंके प्रहार सहे वा उनसे बचनेके लिये देश त्याग करके चले गये, आज वे लौटकर आते हैं और देखते हैं कि नये वीर पैदा हो गये हैं। जिन क्रान्तिकारियोंने लुक छिपकर जापानका विरोध किया था वे ही धीरे-धीरे जापानियोंसे कोरियाका अधिकार लेने लग गये, क्योंकि अमेरिकनोंके कोरिया पहुँचनेके पहले ही कोरियन क्रान्तिकारियोंको जापानियोंने यह सोचकर कोरियन नेता लूहऊन ह्यूगसे बात-चीत की, कि इस बीचमें कोरियन कहीं बलवा करके जापानियोंकी जानें न ले लें। इसके फलस्वरूप [illegible]होंने कोरियनोंसे यह समझौता किया कि वे देशमें शान्ति रखेंगे। [illegible]के बदले जापानी राजनीतिक बन्दियोंको छोड़ देंगे, नागरिक अधिकार देंगे, राजनीतिक पार्टियों और मीटिंगोंके संगठनके विरुद्ध नियम तोड़ देंगे। इसके बाद तो सब संस्थाएँ जो-गैरकानूनी करार दी गयी थीं, सब कानूनी हो गयीं। अनन्तर कोरियाके नवनिर्माणके लिये कमीशन बना, [illegible] [illegible]ऊन ह्यूङ्ग हुए जो बहुत बार जेल काट चुके हैं।

अगस्त १९४५ [illegible] १४५ नगरोंमें प्रजा समितियाँ (पीपल्स कमिटीज) सार्वजनिक सभाओंमें निवा[illegible] हुईं और ये जापानियोंके स्थान लेने लगीं। ६ सितम्बरको अस्थाय[illegible] कमीशनने स्योलमें राष्ट्रीय प्रतिनिधि सम्मेलनका आवाहन किया, जिसमें [illegible]भिन्न प्रदेशोंसे ६०० प्रतिनिधि एकत्र हुए। इसने केन्द्रीय प्रजासमिति और शासन संघटन समिति (constitution drafting committee) [illegible]र्वाचित की और अस्थायी प्रजा-

तंत्रकी घोषणा की पर अमेरिकाने इनकी उपेक्षा की। रूसियोंने इसके विरुद्ध देशभक्तों और क्रान्तिकारियोंपर भरोसा किया और उन्हींका साथ दिया। सुव्यवस्थाके लिये अमेरिकन जापानियों और इनके सहयोगी कोरियनोंसे काम लेते हैं। पर रूसियोंको तो देशभक्त, क्रान्तिकारी और इनमें भी कम्यूनिस्ट प्रिय हैं। इसी लिये कोरियामें रूसी प्रिय और अमेरिकन अप्रिय हैं।